मूल्य : तीन रुपये पचास पैसे

विषय सूची

डा. रामकुमार वर्मा जी एकांकी को एक मंत्र, एक अंकुश, एक गागर और काम का कुसुम-धनु मानते हैं :

"मेरी दृष्टि भी जीवन का संकेत खोजने की चेष्टा में रहती है। कोई ऐसा भाव-बिन्दु मैं आँक सकूँ, जिसमें जीवन का प्रतिनिधित्व झलक जाए। कोई ऐसी गागर भर दूँ जिसमें सागर का अस्तित्व समा जाए, मेरे हाथ में ऐसा अंकुश आ जाए जिसके वश में भावों का ऐरावत उठने-बैठने लगे। मेरी लेखनी से ऐसा मंत्र निकले जिसके वश में 'विधि हरि हर सुर सर्व' हो अथवा मेरे हाथों में काम का ऐसा कुसुम-धनु हो जिससे सकल-भुवन अपने वश में हो जाए। एकांकी ऐसा ही भाव-बिन्दु है, ऐसी गागर है, ऐसा ही अंकुश है, ऐसा ही मंत्र और ऐसा ही काम का कुसुम-धनु है।"

एकांकी की परिभाषा अनेक विद्वानों ने की है पर प्रायः उनमें साम्य ही अधिक दृष्टिगोचर होता है।

प्रो. सद्गुरुशरण अवस्थी आकार-प्रकार पर दृष्टि रखकर एकांकी में एक सुनिश्चित, सुकल्पित लक्ष्य, एक ही घटना, परिस्थिति अथवा समस्या, प्रभाव और सबके निदर्शन में चातुरी को आवश्यक मानते हैं। वे एकांकियों में लम्बे-लम्बे कथोपकथन, दृश्यों के आधिक्य, विषयान्तरता, वर्णन बाहुल्य तथा चरित्र-विकास के लम्बे प्रयोग या उलझी समस्याओं को अवांछनीय मानते हैं।

दूसरी ओर सेठ गोविन्ददासजी विषय की दृष्टि से अवस्थीजी से सहमत-से ही प्रतीत होते हैं। उनकी धारणा है कि एकांकी में सर्वप्रथम किसी एक मूल विचार का होना आवश्यक है। सेठजी का अभिप्राय विचार शब्द से साधारण विचार मात्र न होकर जीवन की कोई समस्या है। वे एक ही समय की एक ही घटना, एक ही कृत्य के सम्बन्ध में होना एकांकी के लिए अनिवार्य मानते हैं। सेठजी की दृष्टि में वही एकांकी श्रेष्ठ है जिसमें तीव्र संघर्ष होता है। उनका मत है कि एकांकी वही उच्च-कोटि का होता है जिसमें तीव्र संघर्ष हो, संगठित एवं मनोरंजक कथा हो, विशद चरित्र-चित्रण हो और स्वाभाविक कथोपकथन हो।

सामान्य रूप से एकांकी उस नाटक को कहते हैं जिसमें एक ही अंक हो

और जो किसी एक सवेदना, एक तथ्य या प्रसंग को प्रस्तुत करे। वह अपने आप मे पूर्ण होना है।

प्रसिद्ध एकांकीकार अश्क इस दृष्टिकोण के विरोध मे अपना मत प्रस्तुत करते है। उन्होंने आकार पर बल दिया है। दृश्यो की अनेकता स्वीकार करते हुए भी उन एकांकियो को अधिक महत्त्व देते है जिनमे एक अंक और एक ही दृश्य हो। उनके मतानुसार एकांकी ३० मिनट से लेकर ४५ मिनट तक समाप्त हो जाना चाहिए। वह रग-सकेत, कार्य-गति, अभिनय सवाद, वातावरण, चरित्र-चित्रण, प्रकाश अथवा छाया के प्रयोग को एकांकी के महत्त्वपूर्ण तत्त्व घोषित करते हैं। अश्क के विचार से सकलन-त्रय का गुम्फन एकांकी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है। अश्कजी की यह विचारधारा अपने आप मे कोई वजन नही रखती है, क्योंकि आकार इतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना कि जीवन का निदर्शन। यदि किसी नाटक मे जीवन के एक पक्ष या तथ्य की अभिव्यक्ति होती है तो वह आकार मे छोटा हो यह कोई जँचने वाली बात नही है। हाँ, सामाजिको की रुचि मे बाधा न हो, यह आवश्यक शर्त अवश्य कही जा सकती है।

डा रामकुमार वर्मा ने भाव पक्ष और कला पक्ष दोनो को दृष्टि-पथ मे रखते हुए एकांकी के विषय मे लिखा है "मेरे सामने एकांकी नाटक की भावना वैसी ही है जैसे एक तितली फूल पर बैठकर उड जाए। उसकी घटना-वस्तु से जीवन मनोरजन के साथ निखरे रूप मे आ जावे। समझने मे न तो प्रयास की ही आवश्यकता हो न थकावट ही हो। एक पृष्ठ उलट जाए और उसको उलटाने हुए आपके मुख पर सुख और सतोष हो।"

डा. नगेन्द्र के मतानुसार एकांकी मे एक अक, विस्तार की सीमा कहानी जैसी, जीवन का एक पहलू, एक महत्त्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा उद्दीप्त क्षण, एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता की अनिवार्यता, सकलन-त्रय का साधारण पालन, प्रभाव और वस्तु का ऐक्य होना एकांकी के लिए वाछनीय है। वे स्थान और काम की अनिवार्यता को नही स्वीकारते है।

यद्यपि डा. एस. पी. खत्री ने एकांकी की कोई निश्चित परिभाषा नही दी है तथापि वे सक्षिप्तता, समय की कमी और परिधि सकोच की ओर

डा. रामकुमार वर्मा ने एकांकी को एक मंत्र, एक अंकुश, एक गागर और काम का कुसुम धनु मानते हैं

"मेरी दृष्टि में जीवन का संकेत आंकने की चेष्टा में रहती है। कोई ऐसा भाव बिन्दु मैं आंक सकूँ, जिसमें जीवन का प्रतिबिम्ब झलक जाए। कोई ऐसी गागर भर दूँ जिसमें सागर का अस्तित्व समा जाए, मेरे हाथ में ऐसा अंकुश आ जाए जिसके वश में भावों का ऐरावत उठता-बैठता रहे। मेरी लेखनी से ऐसा मंत्र निकले जिसके वश में 'किंचित् हरि हर सुर नर' हों अथवा मेरे हाथों में काम का ऐसा कुसुम-धनु हो जिससे सकल-भुवन अपने वश में हो जाए। एकांकी ऐसा ही भाव-बिन्दु है, ऐसी गागर है, ऐसा ही अंकुश है, ऐसा ही मंत्र और ऐसा ही काम का कुसुम-धनु है।"

एकांकी की परिभाषा अनेक विद्वानों ने की है पर प्रायः उनमें साम्य ही अधिक दृष्टिगोचर होता है।

प्रो. सद्गुरुशरण अवस्थी आकार-प्रकार पर दृष्टि रखकर एकांकी में एक सुनिश्चित, सुकल्पित लक्ष्य, एक ही घटना, परिस्थिति अथवा समस्या, प्रभाव और सबके निर्देशन में चातुर्य को आवश्यक मानते हैं। वे एकांकियों में लम्बे-लम्बे कथोपकथन, दृश्यों के आधिक्य, विषयान्तरता, वर्णन बाहुल्य तथा चरित्र-विकास के सर्वांग प्रयोग या उलझी समस्याओं को अवांछनीय मानते हैं।

दूसरी ओर सेठ गोविन्ददासजी विषय की दृष्टि से अवस्थीजी से सहमत-से ही प्रतीत होते हैं। उनकी धारणा है कि एकांकी में सर्वप्रथम किसी एक मूल विचार का होना आवश्यक है। सेठजी का अभिप्राय विचार शब्द से साधारण विचार मात्र न होकर जीवन की कोई समस्या है। वे एक ही समय की एक ही घटना, एक ही कृत्य के सम्बन्ध में होना एकांकी के लिए अनिवार्य मानते हैं। सेठजी की दृष्टि में वही एकांकी श्रेष्ठ है जिसमें तीव्र संघर्ष होता है। उनका मत है कि एकांकी वही उच्च-कोटि का होता है जिसमें तीव्र संघर्ष हो, सगठित एवं मनोरंजक कथा हो, विशद चरित्र-चित्रण हो और स्वाभाविक कथोपकथन हो।

सामान्य रूप से एकांकी उस नाटक को कहते हैं जिसमें एक ही अंक हो

और जो किसी एक संवेदना, एक तथ्य या प्रसंग को प्रस्तुत करे। वह अपने आप में पूर्ण होता है।

प्रसिद्ध एकांकीकार अश्क इस दृष्टिकोण के विरोध में अपना मत प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने आकार पर बल दिया है। दृश्यों की अनेकता स्वीकार करते हुए भी उन एकांकियों को अधिक महत्त्व देते हैं जिनमें एक अंक और एक ही दृश्य हो। उनके मतानुसार एकांकी ३० मिनट से लेकर ४५ मिनट तक समाप्त हो जाना चाहिए। वह रंग-संकेत, कार्य-गति, अभिनय संवाद, वातावरण, चरित्र-चित्रण, प्रकाश अथवा छाया के प्रयोग को एकांकी के महत्त्वपूर्ण तत्त्व घोषित करते हैं। अश्क के विचार से संकलन-त्रय का गुम्फन एकांकी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है। अश्कजी की यह विचारधारा अपने आप में कोई वजन नहीं रखती है, क्योंकि आकार इतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना कि जीवन का निदर्शन। यदि किसी नाटक में जीवन के एक पक्ष या तथ्य की अभिव्यक्ति होती है तो वह आकार में छोटा हो यह कोई जँचने वाली बात नहीं है। हाँ, सामाजिकों की रुचि में बाधा न हो, यह आवश्यक शर्त अवश्य कही जा सकती है।

डा. रामकुमार वर्मा ने भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों को दृष्टि-पथ में रखते हुए एकांकी के विषय में लिखा है "मेरे सामने एकांकी नाटक की भावना वैसी ही है जैसे एक तितली फूल पर बैठकर उड़ जाए। उसकी घटना-वस्तु से जीवन मनोरंजन के साथ निखरे रूप में आ जावे। समझने में न तो प्रयास की ही आवश्यकता हो न थकावट ही हो। एक पृष्ठ उलट जाए और उसको उलटाते हुए आपके मुख पर सुख और सन्तोष हो।"

डा. नगेन्द्र के मतानुसार एकांकी में एक अंक, विस्तार की सीमा कहानी जैसी, जीवन का एक पहलू, एक महत्त्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा उद्दीप्त क्षण, एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता की अनिवार्यता, संकलन-त्रय का साधारणतः पालन, प्रभाव और वस्तु का ऐक्य होना एकांकी के लिए वाञ्छनीय है। वे स्थान और काल की अनिवार्यता को नहीं स्वीकारते हैं।

यद्यपि डा. एस. पी. खत्री ने एकांकी की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी है तथापि वे संक्षिप्तता, समय की कमी और परिधि संकोच की ओर

इंगित करते हैं। वे कथावस्तु, अभिनयशीलता, एक ही प्रभाव के लिए एक ही भावना के चित्रण को विशेष महत्त्व देते हैं। डा. सत्येन्द्र भी संकलन-त्रय, गति, संघर्ष एवं विकास, एकदम समाप्ति (आकस्मिकता) आदि को एकांकी के लिए अनिवार्य मानते हैं। डा सत्येन्द्र कला की दृष्टि से चरमोत्कर्ष को आवश्यक नहीं मानते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर एकांकी का कुछ नहीं बहुत कुछ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। कुछ लोग एकांकी को नाटक का संक्षिप्त संस्करण बताते हैं, कुछ स्वतन्त्र विधा स्वीकारते हैं। मैं समझता हूं एकांकी प्रारम्भ में भले ही नाटक का संक्षिप्त रूप लेकर हिन्दी जनता के समक्ष आया हो पर आज उसका विकास हो गया है और वह प्रौढ़ विधा के रूप में हमारे समक्ष है। कलेवर की दृष्टि से एकांकी एक अंक का नाटक है, किन्तु दृश्य-विधान के अनुसार उसके दो भेद किये गये हैं। पहला भेद तो वह है कि जिसमें एकांकी में केवल एक ही दृश्य रखा गया है और दूसरा वह है जिसमें अनेक दृश्यों की योजना की गयी है। पहली श्रेणी के एकांकी में कथा किसी घटित घटना के मार्मिक स्थल से आरम्भ होती है और भावी घटनाओं के अवरोध से जिज्ञासा तथा कुतूहल की वृद्धि करती हुई तीव्र गति से विस्मयपूर्ण संक्रमण बिन्दु तक पहुँचती है। इसमें त्रिक्-संगति का पूर्ण निर्वाह होता है। दूसरी श्रेणी के एकांकी वे हैं जिनमें विभिन्न स्थलों और समयों की घटना के द्वारा कथा में वक्रता या विचित्रता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। इसी का परिणाम यह होता है कि अनेक दृश्यों की योजना करनी पड़ जाती है। इस प्रकार के एकांकियों में कथा की धारा भूप्रदेश की प्रवाहशीलता, विस्तृत मूलवर्ती सरिता के सदृश होती है जो ऋजु या वक्र गति से अग्रगामी होकर उद्देश्य-सिन्धु में मिल जाती है। इन प्रकार की कृतियों में समस्या को उलझा करने और तथ्य को उद्घाटित करने में ही कृति की सफलता स्वीकारी जाती है।

मर्यादा की दृष्टि से यदि हम एकांकी पर विचार-विमर्श करें तो स्पष्ट होगा कि एकांकी में केवल अधिकाधिक कथा की ही प्रमुखता होती है। वहीं घटना या कथा प्रारम्भ होकर विकसित होती हुई अन्त की ओर बढ़ती है। इसी का परिणाम यह होता है कि उसमें जटिलता नहीं आने

जाता है। उसमें प्राय: एक घटना अनेक लघु घटनाओं के आश्रय में पलकर आगे विकास को प्राप्त होती है। इसमें कम से कम पात्र होते हैं जो किसी न किसी प्रकार कथा से नैकट्य स्थापित किये हुए होते है। इस प्रकार के एकांकियो में किसी सुनिश्चित ध्येय की अभिव्यंजना अव्यर्थ शब्दों मे संतुलन और मितव्ययिता के साथ की जाती है। उसमे बाह्य या अन्त:संघर्ष भी रहता है, जो परिस्थिति, वातावरण के अनुसार उद्दीप्त होकर कथा के विकास में सहायक होता है। कभी-कभी यही संघर्ष उद्देश्य के रूप मे भी अभिव्यक्त होता है, उसमें स्थान-काल की एकता अनिवार्य रूपेण नहीं स्वीकारी जाती है, किन्तु विकल्प से, शिल्प कौशल के माध्यम से स्थल, कार्य, काल का उचित संकलन किया जाता है।

सीमा, विस्तार और प्रभाव की दृष्टि से देखे तो विदित होगा, एकांकी नाटक या अनेकांकी नाटक मे वही सम्बन्ध है जो कहानी और उपन्यास मे है। जहाँ अनेकांकी नाटक मे जीवन की विविधता, पात्राधिक्य, कथासूत्रो की सुविमर्दता, अंक-बाहुल्य चरित्र-वैचित्र्य, अनिश्चित कौतूहल, परिचयाधिक्य, चरम-बिन्दु की व्यापकता तथा कथा की मंदगामिता है वहाँ एकांकी में जीवन की एकपक्षता, पात्र-परिमितता, कथा के प्रमुख सूत्र के प्रति आग्रह, एक अंक का नियोजन, चारित्रिक एषणा, कौतूहल व्याप्ति, व्यंजना की निर्देशिता और क्षिप्र कथाप्रवाह है।

कहानी और एकांकी

कुछ लोग एकांकी और कहानी को मिलाकर एक कर देते हैं, पर वस्तुत: इनमें एक मौलिक अन्तर है। आकार-लघुता के आग्रह से हम इन दोनो विधाओ को एक भले ही कह लें, पर प्रकृति और आत्मा की दृष्टि से दोनों के लक्ष्य भिन्न-भिन्न है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने लिखा है कि "एकांकी कहानी का रंगमंच पर खेला जाने वाला संस्करण-मात्र है।" एकांकी और कहानी में उद्देश्य की दृष्टि से तो अन्तर है ही, टेक्नीक की दृष्टि मे भी अन्तर स्पष्ट है। कहानी का उद्देश्य उसे पढ़ने या सुनने मे है और एकांकी का रंगमंच पर खेलने मे। कहानीकार की दृष्टि मे पाठक प्रमुख होता है और एकांकीकार की दृष्टि सीधी रंगमंच पर आकर

लिखता है, दर्शक ही उसकी दृष्टि में प्रधान होता है। इस उद्देश्य तक अन्तर के साथ-साथ एकांकी और कहानी की टेकनीक में अन्तर स्पष्ट एकांकीकार सर्वप्रथम अभिनय की ओर मुड़ता है। अभिनय के र मंच सम्बन्धी अनेक बंधनों को स्वीकार लेने के बाद ही वह कलम उठाता है। एकांकी में से यदि नाटकीयता या अभिनेयता वाला निकाल दिया जाए तो वह कहानी का ही रूप धारण कर लेता है।

विद्यालंकारजी ने जो बात कही है उससे मैं तनिक सहमत नहीं, क्योंकि प्रत्येक कहानी को एकांकी के गुणों से विभू... नहीं किया जा सकता है और न उसे रंगमंचीय विशेषताओं से विभूषित किया जा सकता है। वस्तुतः इन दोनों में भेद है। इनका स्वतन्त्र अस्तित्व है और रहेगा। डा. रामकुमार वर्मा भी लिखते हैं: "कहानी लज्जाशीला नारी की भाँति मंच पर आने का साहस नहीं करती। वह पाठकों के मनोमंच पर ही अवगुण्ठन डाले हुए अपने विचार के नाखून से जीवन की भाव-भूमि कुरेदती रहती है।" अतः यही कहना पड़ता है कि कहानी और एकांकी में एकता हो सकती है कुछ विचार-बिन्दुओं में, पर दोनों को एक ही कोटि में नहीं रखा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् बड़ी आसानी से एकांकी के तत्त्वों को इस प्रकार रखा जा सकता है—कथावस्तु, पात्र या चरित्र-चित्रण, कथोपकथन या संवाद, भाषा शैली और उद्देश्य। इन तत्त्वों के अतिरिक्त संकलन-त्रय, संघर्ष या द्वन्द्व को भी एकांकी के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

कथावस्तु—यथार्थ जीवन पर आधारित जीवन के किसी भी क्षेत्र से एकांकी की कथावस्तु का चयन किया जा सकता है, पर उसमें उत्तेजना, रोचकता और विस्मय के गुण होने चाहिए। कथावस्तु के विकास की ये पाँच अवस्थाएँ हैं—१. आरम्भ, २. नाटकीय स्थल, ३. द्वन्द्व, ४. चरमसीमा, ५. परिणति।

सफल एकांकी का प्रथम वाक्य ही कौतूहल की असीम शक्ति से पूर्ण होता है। अतीत तो स्पष्ट होता ही है और कथा तेजी से नाटकीय स्थिति की ओर बढ़ती है। समाप्ति पर कुछ ऐसा नहीं रह जाता है जो नाटककार को कहना है।

किसी भी एकांकी के लिए यह आवश्यक और पहली शर्त है कि उसका वस्तु-विन्यास कलापूर्ण हो, उसमें शिथिलता न हो। उसमें स्पष्टता के साथ-साथ कौतूहल भी अनिवार्य है, जिससे उसका सौन्दर्य चमक उठे। एकांकी की कथा में वर्णनात्मक तत्त्व प्रमुख नहीं होना चाहिए। अभिनय की प्रमुखता के समक्ष उसका स्थान गौण है। वास्तव में एकांकी की कथावस्तु की प्राणशक्ति अन्तर्द्वन्द्व के सफल चित्रांकन में है। यदि लेखक किसी प्रकार अन्तःसंघर्ष की सृष्टि नहीं कर सका है तो आकर्षक घटना के होने पर भी एकांकी में त्रुटि रह जाती है। उसमें न तो प्रभाव-प्रवणता ही आ पाती है और न कलात्मकता का गुण ही आ सकता है।

एकांकी की कथावस्तु में संकलन-त्रय (three unities) का भी प्रश्न उठा करता है। कुछ लोग इसे एकांकी के लिए आवश्यक मानते हैं और कुछ अनावश्यक। डा. रामकुमार वर्मा के सभी एकांकियों में संकलन-त्रय के प्रति प्रबल आग्रह है। यह संकलन समय, कार्य और स्थान की इकाई का है। समय से तात्पर्य लगातार होने वाली घटनाओं के अन्तर से है। यह अन्तर बरायनाम होना चाहिए। यह नहीं होना चाहिए कि घटनाओं में वैषम्य उत्पन्न हो जाए। यह वैषम्य इस प्रकार आता है जब किसी पात्र विशेष की एक घटना तो बाल्यावस्था की हो और दूसरी वृद्धावस्था की। यह अस्वाभाविकता को जन्म देती है। कार्य से अभिप्राय यह है कि पात्र एकांकी में एक ही कार्य करे। इसी प्रकार उसमें यदि अनेक दृश्य हों तो वे एक ही स्थान पर घटित होने चाहिए, ऐसा न हो कि एक दृश्य तो बम्बई का हो और दूसरा कलकत्ता का। संकलन-त्रय एकांकी में हो यह कोई जरूरी बात नहीं है। यह तो एकांकीकार की प्रवृत्ति पर, उसके रचना कौशल पर आधारित है कि वह कथा के विभिन्न कोणों को एक ही दृश्य में मिलाये और समय, स्थान तथा कार्य की दूरियों को एक कर दे। ऐसी अवस्था में एकांकीकार को पहले ही कथा की समस्त तीव्रतम स्थितियों का संकलन सावधानी से कर लेना पड़ता है। डा. वर्मा के सभी एकांकियों में प्रायः संकलन-त्रय का निर्वाह हुआ है, जैसे 'चारुमित्रा' में कथा कलिंग युद्ध के राजशिविर में आरम्भ होती है और वहीं समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत कथा की परिवर्तित

हो, एकांकीकार के भाव या विचार पात्रों पर ऊपर से लादे गये नहीं होने चाहिए। पात्रों का व्यक्तित्व भी स्वतंत्र होना परमावश्यक है। वे क्रीडा-कंदु नही होने चाहिए। एकांकी के सीमित समय में पात्रों के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण जानकारी देना एकांकीकार का कठिन कर्म है।

संवाद या कथोपकथन—एकांकी शिल्प का तीसरा तत्त्व कथोपकथन है। इसे ही एकांकी का प्राण या सर्वस्व मानना चाहिए। कथोपकथनों की योजना मे एकांकीकार को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

१. कथोपकथन ऐसे हों जो पात्रो की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करते हों।

२. संवादों की एकमात्र विशेषता यह है कि वे कथावस्तु को गतिशील बनायें।

३. कथोपकथन संक्षिप्त और प्रभावशाली होने चाहिए।

४. कथोपकथनों की भाषा सरल और सजीव होनी चाहिए।

एकांकी में कथोपकथन यदि इन उपर्युक्त बातो मे योग नही देते हैं तो वे महत्त्वहीन और असगत कहे जाते हैं। एकांकीकार को एकांकी की रचना मे आवश्यक संवादो की सृष्टि से यथाशक्ति बचना चाहिए। वाक्य तो बहुत दूर की बात है, एक शब्द भी निरर्थक नही होना चाहिए। स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, वाग्विदग्धता, रोचकता, प्रभावोत्पादकता सवाद के उत्कृष्ट गुण हैं। सवाद उपदेशात्मक नही होने चाहिए। वे संभाषण न बनें इस बात की ओर भी लेखक का पूरा-पूरा ध्यान होना चाहिए।

प्रत्येक पात्र को उसकी जाति, गुण और पद के आधार पर वेशभूषा और वार्तालाप करना चाहिए। प्रत्येक पात्र की भाषा और शैली मे अन्तर होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि निम्नवर्गीय प्राणी भी शुद्ध भाषा का प्रयोग करने लग जायें। अतः एकांकीकार को चाहिए कि वह अपने पात्रो से शैलीगत और भाषागत भेद रखे। अशिक्षित और साधारण पात्र के मुख से विशुद्ध भाषा और उच्च विचारों को व्यक्त कराना एकांकी कला की हत्या कराना है। डा. रामकुमार वर्मा ने लिखा है : "केवल मनोरंजन के लिए या नाटककार द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादन

हों, एकांकीकार के भाव या विचार पात्रों पर ऊपर से लादे गये नहीं होने चाहिए। पात्रों का व्यक्तित्व भी स्वतंत्र होना परमावश्यक है। वे त्रीड़ा-कंदु नहीं होने चाहिए। एकांकी के सीमित समय में पात्रों के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण जानकारी देना एकांकीकार का कठिन कर्म है।

संवाद या कथोपकथन—एकांकी शिल्प का तीसरा तत्व कथोपकथन है। इसे ही एकांकी का प्राण या सर्वस्व मानना चाहिए। कथोपकथनों की योजना में एकांकीकार को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

१. कथोपकथन ऐसे हों जो पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करते हों।

२. संवादों की एकमात्र विशेषता यह है कि वे कथावस्तु को गतिशील बनायें।

३. कथोपकथन संक्षिप्त और प्रभावशाली होने चाहिए।

४. कथोपकथनों की भाषा सरल और सजीव होनी चाहिए।

एकांकी में कथोपकथन यदि इन उपर्युक्त बातों में योग नहीं देते हैं तो वे महत्वहीन और असंगत कहे जाते हैं। एकांकीकार को एकांकी की रचना में आवश्यक संवादों की सृष्टि से यथाशक्ति बचना चाहिए। वाक्य तो बहुत दूर की बात है, एक शब्द भी निरर्थक नहीं होना चाहिए। स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, वाग्विदग्धता, रोचकता, प्रभावोत्पादकता संवाद के उत्कृष्ट गुण हैं। संवाद उपदेशात्मक नहीं होने चाहिए। वे संभाषण न बनें इस बात की ओर भी लेखक का पूरा-पूरा ध्यान होना चाहिए।

प्रत्येक पात्र को उसकी जाति, गुण और पद के आधार पर वेशभूषा और वार्तालाप करना चाहिए। प्रत्येक पात्र की भाषा और शैली में अन्तर होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि निम्नवर्गीय प्राणी भी शुद्ध भाषा का प्रयोग करने लग जायँ। अतः एकांकीकार को चाहिए कि वह अपने पात्रों से शैलीगत और भाषागत भेद रखें। अशिक्षित और साधारण पात्र के मुख से विशुद्ध भाषा और उच्च विचारों को व्यक्त कराना-एकांकी कला की हत्या कराना है। डा. रामकुमार वर्मा ने लिखा है : "केवल मनोरंजन के लिए या नाटककार द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादन

परिस्थितियाँ, घटना, पात्र, दृश्य, वातावरण-वैचित्र्य और सौन्दर्य प्रदर्शन के लिए अनेक दृश्यों वाले एकांकी में त्रिक्-संगति नहीं रह पाती है। 'भोर का तारा' के पहले दृश्य में रंगभूमि कवि शेखर का साधारण गृह है और दूसरे दृश्य में उज्जयिनी के आर्य देवदत्त का विशाल भवन है जिसमें यशस्वी महाकवि शेखर अपनी प्रेमपत्नी छाया के साथ सुख और वैभव में रहने लगता है।

पात्र—पात्रों के अभाव में तो किसी भी नाट्य-रूप की कल्पना नहीं की जा सकती है लेकिन एकांकी के सम्बन्ध में जहाँ तक सम्भव हो पात्र कम ही होने चाहिए। पात्र विधान के सम्बन्ध में पहली बात यह है कि एकांकी में उनकी संख्या पाँच या छह से अधिक नहीं होती। दूसरे, उसमें केवल मुख्य और गौण दोनों प्रकार के पात्र रखे जा सकते हैं। साहस, प्रणय और वीरता की कहानी में नायक के साथ प्रतिनायक की कल्पना भी एकांकी को प्रभावशाली बना देती है। तीसरे, पात्रों में से किसी एक को विदूषक बना दिया जाता है या कभी-कभी पात्रों में से ही किसी के व्यक्तित्व में हास्य, विनोद भर दिया जाता है। पात्रों को सजीव-व्यक्तित्ववान होना चाहिए नहीं तो एकांकी में आकर्षण नहीं रहता है। कहा जाता है कि एकांकी के चरित्र विधान में मनोविज्ञान, वातावरण के अनुसार ही योजना होनी चाहिए। पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व अधिक आवश्यक है और इसके लिए एकांकीकार में पटुता भी होनी चाहिए; साधारण पटुता नहीं, ऐसी पटुता जो पाठक के मन में यह भाव पैदा कर दे कि ठीक क्या है। गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'सोहागबिन्दी' में जब वाली बाबू अपनी पत्नी प्रतिमा के अस्थिखण्ड रो-रोकर बक्स में रखने जा रहे हैं तब विनोद बाबू को लिखे गये पत्र में प्रतिमा के शब्दों—"........मैं हर घड़ी तुम्हारी राह देखा करती हूँ फिर किससे पूछूँ तुम्हारा पता ? कैसे पूछूँ ?.... ...."—को पढ़कर सन्न रह जाते हैं। उनके मन में पत्नी के पतिव्रत के सम्बन्ध में भाव-संघर्ष इतनी जल्दी उठता है कि उनके हाथ से अस्थिखण्ड गिर जाता है और वे धम्म से गिर पड़ते हैं।

पात्रों का स्वाभाविक होना आवश्यक है। कृत्रिमता का आवरण पात्रों के व्यक्तित्व पर नहीं पड़ा होना चाहिए। उनका विकास प्राकृतिक

हों, एकांकीकार के भाव या विचार पात्रों पर ऊपर से लादे गये नहीं होने चाहिए। पात्रों का व्यक्तित्व भी स्वतन्त्र होना परमावश्यक है। वे क्रीड़ा-कंदुक नहीं होने चाहिए। एकांकी के सीमित समय में पात्रों के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण जानकारी देना एकांकीकार का कठिन कर्म है।

संवाद या कथोपकथन—एकांकी शिल्प का तीसरा तत्त्व कथोपकथन है। इसे ही एकांकी का प्राण या सर्वस्व मानना चाहिए। कथोपकथनों की योजना में एकांकीकार को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

१. कथोपकथन ऐसे हों जो पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्‌घाटित करते हों।

२. संवादों की एकमात्र विशेषता यह है कि वे कथावस्तु को गतिशील बनायें।

३. कथोपकथन संक्षिप्त और प्रभावशाली होने चाहिए।

४. कथोपकथनों की भाषा सरल और सजीव होनी चाहिए।

एकांकी में कथोपकथन यदि इन उपर्युक्त बातों में योग नहीं देते हैं तो वे महत्त्वहीन और असंगत कहे जाते हैं। एकांकीकार को एकांकी की रचना में आवश्यक संवादों की सृष्टि से यथाशक्ति बचना चाहिए। वाक्य तो बहुत दूर की बात है, एक शब्द भी निरर्थक नहीं होना चाहिए। स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, वाग्विदग्धता, रोचकता, प्रभावोत्पादकता संवाद के उत्कृष्ट गुण हैं। संवाद उपदेशात्मक नहीं होने चाहिए। वे भाषण न बनें इस बात की ओर भी लेखक का पूरा-पूरा ध्यान होना चाहिए।

प्रत्येक पात्र को उसकी जाति, गुण और पद के आधार पर वेशभूषा और वार्तालाप करना चाहिए। प्रत्येक पात्र की भाषा और शैली में अन्तर होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि निम्नवर्गीय प्राणी भी शुद्ध भाषा का प्रयोग करने लग जायें। अतः एकांकीकार को चाहिए कि वह अपने पात्रों में शैलीगत और भाषागत भेद रखे। अशिक्षित और साधारण पात्र के मुख से विशुद्ध भाषा और उच्च विचारों को व्यक्त कराना एकांकी कला की हत्या कराना है। डा. रामकुमार वर्मा ने लिखा है : "केवल मनोरंजन के लिए या नाटककार द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादन

के लिए कथोपकथन का विस्तार करना पात्रों के मुख से उ
स्वाभाविक ध्वनि छीन लेना है। फिर तो नाटक में पात्र नहीं बो
नाटककार या एकांकीकार पात्रों के मुख से कोयल या कौवा बन-बन
बोलता है।"

स्वगत भाषणों का आधुनिक एकांकियों में कोई स्थान ही
रह गया है। पात्र यदि एकान्त में बोलते हैं तो केवल इसी अर्थ से
किसी पात्र-विशेष की मानसिक स्थिति का चित्रण करना है। हाँ,
आवश्यक है कि इस प्रकार के एकान्त भाषण दीर्घ न हों। इस प्रकार
भाषणों की अतिशयता नाटक को बोझिल बना देती है।

भाषा-शैली—एकांकी की भाषा और शैली में ओज और ध्व
तथा शैली में पकड़ की प्रधानता रहती है। भाषा सरल और ज
साधारण की होनी चाहिए। एकांकी का सर्वप्रधान गुण अभिनेयता है
अभिनेय या रंगमंचीय एकांकियों की भाषा स्वाभाविक और सरल हो
चाहिए। उद्देश्य की एकता और प्रभाव की अन्विति एकांकी के प्रथ
गुण है। प्रभाव और द्रुतगति एकांकी को अधिक रोचक बना देते हैं
उद्देश्यहीन एकांकी की कल्पना केवल कल्पना है। उद्देश्य की दृष्टि से
एकांकियों के अनेक स्तर और भेद हो सकते हैं।

इन सबके *साथ-साथ नाट्य-संकेत या रंग-संकेत* कथा के परिपा
से सम्बन्ध रखते हैं। प्रत्येक एकांकीकार अथवा नाटककार को मा
लेखक ही नहीं निर्देशक भी होना चाहिए अन्यथा रंगमंच सम्बन्धी अने
भूलें उससे हो सकती हैं। *नाटककार अपनी कृति में व्यापक नाटकी*
निर्देश देता है, इससे चाहे अनुभवी निर्देशकों को कोई सहायता न भ
पहुँचे पर लेखक का मन्तव्य समझने में सुगमता होती है। लेखक इ
नाटकीय एवं रंगमंचीय संकेतों को केवल अभिनय की दृष्टि से ही न
लिखता है वरन् इसके विपरीत उसका प्रयोजन कुछ और भी होता है
यह प्रयोजन उन बातों को प्रकट करता है जो संवादों से प्रकट नहीं होत
हैं। उदाहरणार्थ किसी कक्ष की सजावट का ब्योरा एकांकीकार देता
तो वह ब्योरा उस कक्ष में रहने वाले पात्र के अनेक संस्कारों, विश्वासों क
परिचायक होता है। यदि एकांकीकार ने लिखा कि कक्ष में बायीं ओर क

महात्मा गांधी का चित्र है तो दर्शक, पाठक उस कक्ष में स्थित पात्र के विचारों से सहज ही परिचय प्राप्त कर लेंगे। अत: स्पष्ट है कि एकांकी में रंग-संकेत या नाट्य संकेत का विशेष महत्त्व है।

प्रभाव ऐक्य—एकांकी में घटना होनी है पर घटनाएँ नहीं समस्या होती है, समस्याएँ नहीं, इसलिए सम्पूर्ण एकांकी उसी समस्या या उस विचार की ओर अग्रसर होता रहता है जो समक्ष है। एकांकी अपने पाठक के ऊपर एक प्रभाव विशेष छोड़ जाना चाहता है और यदि वह उस समस्या का, जिसे वह लेकर चला है, हल भी सुझा दे तो उसके कलात्मक सौन्दर्य में किसे संदेह हो सकता है। सारांश है कि प्रभावान्विति एकांकी की अपनी कलात्मक विशेषता है।

एकांकी के प्रकार

प्रकार की दृष्टि से एकांकियों को निम्नांकित वर्गों में रखा जा सकता है. १. सुखान्त एकांकी, २. दुखान्त एकांकी, ३. प्रहसन एकांकी, ४. फेन्टेसी, ५. गीति-नाट्य, ६. झांकी, ७. संवाद या सभाषण, ८. मोनो-ड्रामा, ९. रेडियो नाटक इत्यादि।

सुखान्त एकांकी का उद्देश्य भी प्राय वही है जो बड़े सुखान्त नाटक का होता है। अन्तर केवल परिधि की संक्षिप्तता का है। सुखान्त एकांकी अल्पकाल में कोई आनंददायक क्षण या समस्या उत्पन्न करता है। किसी समस्या विशेष को समक्ष रखकर ही इनका निर्माण होता है। इसी कारण इन्हें समस्या एकांकी कहते हैं।

प्रहसन का उद्देश्य व्यक्ति या समाज की किसी त्रुटि, रूढ़ि, दुर्बलता अथवा दुर्गुण को प्रकाश में लाकर उपहास की वस्तु बना देना है। नाटककार का लक्ष्य हँसी-हँसी में समाज-सुधार करना होता है। फेन्टेसी एकांकी का अति नाटकीय रोमांटिक स्वरूप होता है जिसका ताना-बाना स्वप्न से बना हुआ होता है। गीति-नाट्य में कविता या गीतों के माध्यम से एकांकीकार किसी भावपूर्ण स्थल का चित्रांकन करता है।

झांकी में संकलन-त्रय के अनुसार किसी उद्देश्य क्षण को अंकित किया जाता है। सभाषण एकांकी कला का पहला रूप है। इसमें दो

महात्मा गांधी का चित्र है तो दर्शक, पाठक उस वेश में स्थित पात्र के विचारों से सहज ही परिचय प्राप्त कर लेंगे। अतः स्पष्ट है कि एकांकी में रंग-संकेत या नाट्य संकेत का विशेष महत्त्व है।

प्रभाव ऐक्य—एकांकी में घटना होती है पर घटनाएँ नहीं। समस्या होती है, समस्याएँ नहीं, इसलिए सम्पूर्ण एकांकी उसी समस्या या उस विचार की ओर अग्रसर होता रहता है जो समक्ष है। एकांकी अपने पाठक के ऊपर एक प्रभाव विशेष छोड़ जाना चाहता है और यदि वह उस समस्या का, जिसे वह लेकर चला है, हल भी सुझा दे तो उसके कलात्मक सौन्दर्य में किसे सन्देह हो सकता है। सारांश है कि प्रभावान्विति एकांकी की अपनी कलात्मक विशेषता है।

एकांकी के प्रकार

प्रकार की दृष्टि से एकांकियों को निम्नांकित वर्गों में रखा जा सकता है
१. सुखान्त एकांकी, २. दुखान्त एकांकी ३. प्रहसन एकांकी, ४. फैन्टेसी, ५. गीति-नाट्य, ६ झाँकी, ७ संवाद या सम्भाषण, ८ मोनो-ड्रामा, ९. रेडियो नाटक इत्यादि।

सुखान्त एकांकी का उद्देश्य भी प्राय वही है जो बड़े सुखान्त नाटक का होता है। अन्तर केवल परिधि की संक्षिप्तता का है। सुखान्त एकांकी अन्तराल में कोई आनन्ददायक क्षण या समस्या उत्पन्न करता है। किसी समस्या विशेष को समक्ष रखकर ही इनका निर्माण होता है। इसी कारण इन्हें समस्या एकांकी कहते हैं।

प्रहसन का उद्देश्य व्यक्ति या समाज की किसी त्रुटि, रूढ़ि, दुर्बलता अथवा दुर्गुण को प्रकाश में लाकर उपहास की वस्तु बना देना है। नाटककार का लक्ष्य हँसी-हँसी में समाज सुधार करना होता है। फैन्टेसी एकांकी का अति नाटकीय रोमांटिक स्वरूप होता है जिसका ताना-बाना स्वप्न से बना हुआ होता है। गीति-नाट्य में कविता [illegible] के माध्यम से एकांकीकार किसी भावपूर्ण स्थल का चित्रण [illegible]

झाँकी में संकलन-त्रय के अनुसार किसी [illegible] को अंकित किया जाता है। सम्भाषण एकांकी [illegible]

पात्र मनोवैज्ञानिक संघर्ष द्वारा किसी रूप का परिणाम करते हैं। ऐसे ही दूसरा है एक ही पात्र स्वगत रूप से किसी घटना या समस्या को [illegible] अभिनय द्वारा प्रकट करता है। रेडियो नाटक केवल ध्वनि पर आधारित है। ध्वनि के द्वारा नाटक के पात्र अभिनेता प्राण संचार करते हैं। रंगमंच की भाँति अभिनय के शारीरिक और भाव का प्रदर्शन [illegible] नहीं होता। इस सम्पूर्ण कृत्य प्रति की अभिव्यक्ति ध्वनि के द्वारा ही सम्पन्न होती है। आज की दुनिया में रेडियो नाटक का सार्वत्रिक प्रसार हो रहा है।

विषय की दृष्टि से एकांकी के निम्न भेद किये जा सकते हैं

१ सामाजिक एकांकी ७ धार्मिक एकांकी
२ पौराणिक एकांकी ८ ऐतिहासिक एकांकी
३ सांस्कृतिक एकांकी ९ मनोविश्लेषण मूलक एकांकी
४ राजनीतिक एकांकी १० [illegible] एकांकी
५ घटना-प्रधान एकांकी ११ राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचारक एकांकी
६. चरित्र-प्रधान एकांकी १२ वातावरण-प्रधान एकांकी

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आज एकांकी बहुविध होकर हिन्दी जगत् के समक्ष आ रहा है। इससे हम एकांकी के उज्ज्वल भविष्य की ही कल्पना कर सकते हैं।

एकांकी का उद्भव

एकांकी के उद्भव के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् तो ऐसे है जो एकांकी को भारतीय दृष्टिकोण से मानते हैं और कहते है कि एकांकी के सामने भारतीय आदर्श रहा है। इस मत के समर्थकों में प्रमुख रूप से डा. रामकुमारसिंह शर्मा 'कमल', प्रो. ललिताप्रसाद सुकुल, प्रो. सद्गुरुशरण अवस्थी है। प्रो. सद्गुरुशरण अवस्थी ने कहा है कि "यह न समझना चाहिए कि भारत में एकांकी थे ही नहीं।" कुछ विद्वान् एकांकी को पश्चिम की देन मानते हैं। जिस प्रकार आधुनिक हिन्दी कहानी और उपन्यास की प्रेरणा का श्रेय वे पाश्चात्य साहित्य को देते हैं उसी प्रकार एकांकी की प्रेरणा भी वे वहीं से मानते हैं।

खैर जो हो सो हो, हमे इतना मानने मे कोई आपत्ति नहीं है कि

हिन्दी एकांकी को पश्चिमी साहित्य से बड़ी प्रेरणा मिली है पर यह मानने को हम कभी सहमत नहीं हो सकते कि एकांकी पश्चिम की देन है। वस्तुतः हिन्दी के सामने एकांकी का भारतीय आदर्श रहा है। धनंजय के 'दशरूपक' से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। संस्कृत साहित्य में एकांकी के पन्द्रह प्रकार मिलते हैं जिनमें से पाँच---भाण, प्रहसन, व्यायोग, वीथी और अंक---रूपक भेद में आते हैं और शेष दस---गोष्ठी, नाट्य, रासक, उल्लाप, काव्य, रासक-प्रेक्षण, श्रीगदित, विलासिका, भाणिका और हल्लीश---उपरूपक से अठारह भेदों के अन्तर्गत हैं। इससे स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य में आधुनिक एकांकी के स्वरूप से कहीं अधिक विकसित स्वरूप उपस्थित था, पर हां इतना माने बिना काम नहीं चल सकता कि संस्कृत में एकांकी साहित्य अत्यल्प मात्रा में लिखा गया है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि प्राचीन भारतीय आचार्यों के पास समय अधिक था, इसलिए उनकी प्रकृति एकांकी की अपेक्षा नाटकों की ओर रही जो दीर्घकार होते थे।

पाश्चात्य विद्वानों ने तो केवल इतना किया है कि भारतीयों की सोई हुई चेतना को सजग किया है। आज के युग में हिन्दी और अंग्रेजी का सम्बन्ध बड़ा गहरा हो गया है इससे साहित्य भी अछूता नहीं बचा है। आज युग की आवश्यकता ने साहित्यकारों की रुचि में भी परिवर्तन किया है और आज तो धड़ाधड़ एकांकी निकल रहे हैं। अंग्रेजी में एकांकी का लक्ष्य केवल भावोन्मेष ही नहीं है वरन् रुचि-परिष्कार भी प्रतीत होता है। शॉ, गाल्सवर्दी, योट्स आदि लेखकों ने इस दिशा में युग प्रवर्तक का कार्य किया है। शॉ के 'दि मैन ऑव डेस्टिनी', 'डार्क लेडी ऑव दि सॉनेट्स', 'राइडर्स टु सी' उत्तम एकांकियों के उदाहरण हैं।

आधुनिक हिन्दी एकांकी का शिल्प पक्ष अवश्य पश्चिम से प्रभावित प्रतीत होता है। हिन्दी एकांकी पर इन्हीं उपर्युक्त विद्वानों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। हिन्दी नाटक की नयी विधा के रूप में हिन्दी एकांकी ने लड़खड़ाते कदमों से चलना सीखा था, पर आज वह इतना आगे बढ़ गया है कि उसने अन्य विधाओं को पीछे छोड़ दिया है और आज वह हिन्दी आलोचकों, पाठकों का लोकप्रिय विषय बन गया है।

हिन्दी एकांकी का विकास

आधुनिक साहित्य की भांति हिन्दी एकांकी का उदय भी भारतेन्दु-युग मे ही हो चुका था। साहित्य की अन्य विधाओं की भांति भारतेन्दु ने ही हिन्दी एकांकी को जन्म दिया। पिछले कुछ वर्षों मे हिन्दी के गर्भ मे जिन एकांकियों का जन्म हुआ वे संस्कृत एकांकी की परम्परा मे लिखे गये है, किन्तु बाद मे एकांकी के शिल्प पक्ष मे परिवर्तन हुआ है जो पाश्चात्य विचारधारा मे प्रभावित है।

भारतेन्दु के एकांकियों मे ही हिन्दी एकांकी की प्रथम दशा दिखायी देती है। ये नाटक संस्कृत एकांकी-परंपरा के अनुकरण में लिखे गये हैं जिनमे 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम्', 'अन्धेर ‍गरी' और 'धनंजय विजय' प्रमुख है। भारतेन्दु ने मौलिक एकांकियों—प्रेमयोगिनी', 'माधुरी', नीलदेवी'— के साथ-साथ बंगला और संस्कृत ‍ाटकों के अनुवाद भी किये। भारतेन्दु के अतिरिक्त इस युग के अन्य ‍मुख एकांकीकारों मे श्रीनिवास दास का 'प्रह्लाद चरित', राधाचरण ‍ोस्वामी के 'श्रीदामा नाटक' और 'सती चन्द्रावली', प्रतापनारायण मिश्र ‍ा 'कलिकौतुक', देवकीनन्दन त्रिपाठी का 'जय नारसिंह की', राधाकृष्णदास ‍ा 'दु खिनी बाला' आदि से भारतेन्दुकालीन एकांकी के स्वरूप और ‍वभाव का परिचय मिलता है। इनमें अधिकांश सामाजिक और धार्मिक ‍षयों को लेकर लिखे गये हैं। इस समय के एकांकी लेखकों में ‍योध्यासिंह उपाध्याय और प अम्बिकादत्त व्यास का नाम भी ‍ल्लेखनीय है।

भारतेन्दुकालीन एकांकियों को विचार और समस्या की दृष्टि से ‍म्न चार श्रेणियों मे रखा जा सकता है :

१. राष्ट्रीय ऐतिहासिक—जैसे 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी'

२. सामाजिक यथार्थवादी—जैसे 'बालविवाह', 'चौपट चपेट' आदि

३ पौराणिक आदर्शवादी—जैसे 'प्रह्लाद-चरित', 'माधुरी' आदि

४. हास्य व्यंग्यमय प्रहसन—'वैष्णव कुल दंभ दर्पण' और ‍हस्यार्णव' आदि।

इस काल की विशेषताएँ प्रमुखतः ये हैं जिनको हम शिल्प सम्बन्धी विशेषताएँ कह सकते हैं—प्रख्यात कथानक, वीर और करुण रस का प्राधान्य, सामाजिक, धार्मिक त्रुटियों पर व्यंग्य, मनोरंजन। इस काल के एकांकियों पर पारसी रंगमंच का व्यापक प्रभाव रहा है, नांदी, सूत्रधार की विद्यमानता रही, मूल समस्या को प्रकट करने वाले वाक्य, दोहे, उद्धरण मुखपृष्ठ पर दिये गये हैं। संकलन-त्रय का अभाव इनमें रहा है और सत्प्रवृत्तियों को विकसित करना इनका उद्देश्य रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में निबन्ध, लेख, समालोचना, कहानी और गीति-रूपों के प्रति विशेष आकर्षण और नैतिकता की मान्यताओं के कारण एकांकी-कला का विकास अवरुद्ध रहा, पर सन् १९२९ में प्रसाद कृत 'एक घूंट' के प्रकाशन से एकांकी साहित्य के विकास की दूसरी अवस्था सामने आती है। 'एक घूंट' पात्रों की मनोवैज्ञानिकता, वातावरण की प्रभावशाली सृष्टि, समय और स्थल संकलन का निर्वाह, सुगठित कथा संगठन, घटनागत संघर्ष की उत्तरोत्तर क्षिप्रता, संवाद की स्वाभाविकता, मार्मिकता, भावना के स्पर्श, रचना कौशल आदि अनेक दृष्टियों से अपने पूर्वगामी भारतेन्दु-कालीन रूपक-एकांकियों से नितान्त भिन्न है। प्रसाद ने इसके अतिरि 'सज्जन', 'कल्याणी परिणय' और 'कामना' एकांकी भी लिखे हैं, कि उनमें कला का कोई नियत रूप लक्षित ही नहीं होता है।

हिन्दी एकांकी के विकास का तीसरा चरण भुवनेश्वर प्रसाद एकांकी संग्रह 'कारवाँ' से प्रारम्भ होता है। इसका प्रकाशन सन् १९३ में हुआ और यह एकांकी के क्षेत्र में एक नये रूप में आया, 'कारवाँ' एकांकियों की कथावस्तु और शैली पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट है। विव सम्बन्धी सामाजिक रूढ़ियों पर करारा प्रहार करना ही इस संग्रह प्रयोजन प्रतीत होता है। इस संग्रह में सामाजिक समस्याओं की बौद्धि व्याख्या की गयी है।

सन् १९४० के आसपास से हिन्दी एकांकी ने पश्चिम के प्रभाव बड़ी तेजी से ग्रहण किया है मानो 'कारवाँ' के प्रकाशन से हिन्दी एका को अपना पथ मिल गया हो। 'कारवाँ' के बाद कुछ वर्षों तक तो प्रभाव उसी गति से आता रहा, किन्तु बाद में धीरे-धीरे मानो हि

एकांकी की तृषा शमन हुई और पश्चिमी प्रभाव घट-सा गया और आज हिन्दी एकांकी अपने स्वतन्त्र पथ पर चल रहा है।

वर्तमान हिन्दी एकांकी लेखकों में डा. रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, गणेशप्रसाद द्विवेदी, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर, सद्गुरुशरण अवस्थी, पृथ्वीनाथ शर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, नरेन्द्र शर्मा, उग्र आदि हैं।

रामकुमार वर्मा के एकांकियों के कई संग्रह मिलते हैं। उनके अनेक अच्छे एकांकी है जिनमे 'चंपक', 'नहो का रहस्य', 'रेशमी टाई', 'बादल की मृत्यु', 'दस मिनट', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'परीक्षा', 'चारुमित्रा', 'रजनी की रात', 'सप्तकिरण', 'रूपरंग', 'एक तोला अफीम की कीमत' आदि है। डा. वर्मा ने प्रायः सामाजिक और ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है। इनका आधार प्रायः रोमांस है। ये एकांकी किसी नैतिक दृष्टिकोण के सहारे आदर्श की ओर झुके हुए प्रतीत होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो चारित्रिक द्वन्द्वों से उत्पन्न मनोवेदना का शमन ही लेखक का मूल उद्देश्य है। रंगमंचीय दृष्टि से ये सफल हैं और सकलन-त्रय का इनमें पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। डा. वर्मा के एकांकियों मे यथार्थवादी दृष्टिकोण का अवसान आदर्शवाद मे होता है।

सेठ गोविन्ददास गांधीवादी विचारधारा के पोषक हैं। इनके एकांकी कुछ तो लघु आकार के हैं और कुछ बड़े आकार के। एकांकी जगत् में भी सेठजी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनके नाटकों की मूलभूत समस्याएँ राजनीति, सामाजिक विचार-बिन्दुओं से निर्मित हैं। सेठजी के एकांकी तीव्र अनुभूति एवं सबल अभिव्यंजना के निकष पर पूरे नहीं उतरते। अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण, कथोपकथन बड़े सजीव और रोचक हैं। इनके प्रसिद्ध एकांकी संग्रहों में से कुछ ये हैं—'चतुष्पथ', 'नवरस', 'सप्तरश्मि' आदि।

उदयशंकर भट्ट के एकांकी संग्रह 'अभिनव एकांकी', और 'स्त्री का हृदय' आदि नामों से प्रकाशित हुए हैं। पहले संग्रह में 'दुर्गा', 'नेता', 'उन्नीस सौ पैंतीस', 'एक ही कब्र में' आदि छह एकांकी हैं। दूसरे संग्रह में 'जवानी', 'नकली और असली', 'दस हजार', 'बड़े आदमी की मृत्यु',

'विष की पुड़िया' आदि एकांकी हैं जो उच्चकोटि के हैं। सामाजिक जीवन की सफल अभिव्यंजना भट्टजी के एकांकियों की प्राणशक्ति है। मानसिक संघर्ष की सफल अभिव्यंजना भी कुछ एकांकियों में मिलती है। कथोपकथन कहीं-कहीं बड़े होने पर भी स्वाभाविक गति और रोचकता से युक्त हैं। भाषा पात्रानुकूल तथा अभिव्यक्ति सक्षम है। मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं के प्रति इनका भी आकर्षण रहा है।

उग्रजी के एकांकियों में हास्य और विनोद की पर्याप्त सामग्री मिलती है। साहित्यिक उग्रता इनके एकांकियों में पर्याप्त मात्रा में मिलती है। 'अफजल वध', 'भाई मियाँ', 'उजवक', 'राम करे सो होय' आदि इनके श्रेष्ठ एकांकी हैं। कुछ साहित्यिक प्रश्नों और आर्थिक कठिनाइयों पर उग्रजी ने अपने एकांकियों में हास्य का समावेश किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के एकांकी भी मध्यवर्ग की समस्याओं के आधार पर निर्मित हैं। सामाजिक दुर्बलताओं को देखने में इनकी दृष्टि अधिक तेज है। उनका व्यंग्यात्मक चित्रण करने में उनकी लेखनी भी उतनी ही कुशल है। प्रतीत तो ऐसा होता है कि वे समाज के अन्तस् में प्रवेश करके गवेषणा को पूर्ण सक्षमता से अभिव्यक्त करते हैं। इनके एकांकियों में रंगमंचीय गुण भरे पड़े हैं। इनके व्यंग्य हृदय पर आघात करने वाले और शिष्ट होते हैं—'देवताओं की छाया में', 'तूफान से पहले', 'पर्दे के पीछे', 'चरवाहे' आदि अनेक संग्रह निकल चुके हैं। इनके प्रसिद्ध एकांकियों में 'लक्ष्मी का स्वागत' 'पापी', 'विवाह के दिन', 'जोंक', 'समझौता', 'स्वर्ग की झलक', 'छठा बेटा', 'अधिकार का रक्षक' आदि एकांकियों के नाम ले सकते हैं।

गणेशप्रसाद द्विवेदी ने सौन्दर्य और प्रेम को एकांकियों का आधार बनाया है। स्त्री-पुरुष का सहज आकर्षण ही इन सबका विषय है। चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में मनोविश्लेषण को बहुत महत्त्व मिला है। इसी के सम्बन्ध से मानसिक संघर्ष का रंग भी खूब उभरा है। 'सुहाग-बिन्दी', 'दूसरा उपाय ही क्या है', 'सर्वस्व समर्पण', 'वह फिर आयी थी', 'परदे का अपर पार्श्व', 'शर्माजी' और 'कामरेड' आदि अपने एकांकियों में इन्होंने स्त्री-पुरुष के बीच उठने वाले अनेक सहज भावों को अपनी लेखनी से सशक्त बनाकर गरिमा प्रदान की है।

हरिकृष्ण प्रेमी को मध्यकाल से उतना ही मोह रहा है जितना प्रसाद को प्राचीन से। इनके एकांकियों की पीठिका ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक शौर्य, स्वाभिमान और त्याग के चित्रण में प्रेमीजी को आशातीत सफलता मिली है। राष्ट्रीय प्रेम का, देश भक्ति का स्वर इनके एकांकियों में मिलता है। इनके एकांकी संग्रह 'बादलों के पार' और 'मंदिर' आदि प्रसिद्ध है। 'मानव प्रेम' इनके एकांकियों में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त है। अभिव्यक्ति बड़ी स्पष्ट है।

प्रसिद्ध एकांकीकारों की पंक्ति में जगदीशचन्द्र माथुर का नाम भी अविस्मरणीय है। इनके एकांकी ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधारशिला पर निर्मित हैं, किन्तु पाश्चात्य प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। इनकी समस्याएँ मध्य और उच्चवर्ग से सम्बन्धित हैं। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से बनी हुई कथावस्तु कुतूहल-सकलित बनी रहती है। इनके एकांकियों में 'भोर का तारा', 'रीढ़ की हड्डी', 'मकड़ी का जाला', 'खिड़की की राह' आदि प्रसिद्ध हैं।

श्री विष्णु प्रभाकर ने प्रायः सामाजिक ढंग के एकांकियों का प्रणयन किया है। इनके एकांकियों में एक साथ ही सामाजिक समस्याएँ और मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। सामान्यतया इनके एकांकियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है. १ सामाजिक एकांकी, २. मनोवैज्ञानिक एकांकी।

'बन्धनमुक्त', 'पाप', 'साहस', 'प्रतिशोध', 'वीर-पूजा', 'भाई', 'चन्द्रकिरण' आदि इनके प्रसिद्ध सामाजिक एकांकी हैं तथा 'उपचेतना का छल', 'क्या वह दोषी था', 'ममता का विष' आदि इनके मनोवैज्ञानिक एकांकी है। अभिनय की दृष्टि से इनके एकांकी सफल है।

इनके अतिरिक्त सुदर्शन, पृथ्वीनाथ शर्मा सद्गुरुशरण अवस्थी, यशपाल, जैनेन्द्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भगवतीचरण वर्मा आदि के एकांकी भी एकांकी के विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। अवस्थीजी के एकांकी पौराणिक कोटि के है। उनकी भाषा में तीव्रता नहीं है। पृथ्वीनाथ शर्मा के 'दुविधा' आदि एकांकी पाश्चात्य प्रभाव से युक्त हैं पर इनमें 'वारवी' की-सी मुस्कुराहट नहीं है। मंथाद जहीर ने भी एकांकी का प्रारम्भ तो उज्ज्वल

एकांकी, एकांकीकारों का परिचय

डा. रामकुमार वर्मा

डा. वर्मा की जन्मभूमि मध्य प्रदेश है। कई वर्षों से आप प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य के प्राध्यापक हैं। आपने अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ, कविताएँ, नाटक तथा एकांकी लिखे हैं। हिन्दी एकांकी को उसके शिखर तक ले जाने का श्रेय डा. वर्मा को ही है। आपका रंगमंच से निकट का सम्बन्ध रहा है। इनके एकांकियों के कई संग्रह उपलब्ध होते हैं। इनके कुछ प्रसिद्ध एकांकी ये हैं—'चम्पक', 'एक्ट्रेस', 'नहीं का रहस्य', 'बादल की मृत्यु', 'दस मिनट', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'परीक्षा', 'रूप की बीमारी', 'चारुमित्रा', 'रेशमी टाई', 'सप्तकिरण', 'रूप-रंग', 'एक तोले अफीम की कीमत', 'रजनी की रात' आदि।

डा. वर्मा ने प्राय: सामाजिक और ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है। वैसे मानव-मन के अतिरिक्त जगत् का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आपकी कला की विशेषता है। यह सौन्दर्य का कलाकार अपनी समर्थ तूलिका से पात्रों के चरित्र-चित्रण में द्वन्द्व-अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि करता हुआ अपनी कवित्वमयी मधुर भाषा से सजीव प्रतिमा का निर्माण करता है। इनके सभी एकांकी प्रायः रंगमंच की शोभा बने हैं। इनके एकांकियों का बाह्य रूप पश्चिमी होते हुए भी अन्तर भारतीयता से ओत-प्रोत है।

प्रस्तुत एकांकी 'एक तोले अफीम की कीमत' मनोविश्लेषण की पद्धति का द्योतक है। दो पात्र जो आत्महत्या करने को उत्सुक हैं, उनकी मनोदशा का चित्र इस एकांकी में मिलता है, पर अन्त में दोनों ही रास्ते पर आ जाते हैं। एक ओर तो इसमें यह मनोवैज्ञानिक चित्र है दूसरी ओर सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य है। मुरारी मोहन और विश्वमोहिनी का पारस्परिक वार्तालाप बड़ा मधुर और मनोवैज्ञानिक है। भाषा चटपटी

और विनोदात्मक है। चरित्र-चित्रण, वार्तालाप और भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक सफल एकांकी है। टेकनीक की दृष्टि से भी यह बड़ा श्रेष्ठ एकांकी है। हमारे नवयुवक किस प्रकार भावावेश में आकर आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध को करने के लिए तुल जाते हैं, यह इस एकांकी में मिलेगा।

उदयशंकर भट्ट

हिन्दी एकांकीकारों में भट्टजी का प्रमुख स्थान है। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। इन्होंने हमारे साहित्य के सभी अंगों को स्पर्श किया है। ये मधुर गीतकार, सुन्दर कवि, सफल उपन्यासकार, कहानी लेखक तथा प्रसिद्ध नाटककार तथा एकांकीकार हैं। 'अभिनव एकांकी', 'स्त्री का हृदय', 'समस्याओं का अन्त', 'चार एकांकी' आदि नामों से इनके कई एकांकी संग्रह निकले हैं। इनके एकांकियों में कठोर अनुभूति से उत्पन्न हुई वेदना मिलती है। उनमें जीवन की उथल-पुथल और मन को छूने की विधि का अपूर्व समन्वय है। इनके एकांकियों में एक ओर मानसिक संघर्ष की व्यंजना बड़ी कुशलता और सफलता से की गयी है तो दूसरी ओर वर्तमान समाज की समस्याओं पर व्यंग्य है।

प्रस्तुत एकांकी 'पर्दे के पीछे' भट्टजी का श्रेष्ठ एकांकी है। यह एक सामाजिक व्यंग्य है। इस एकांकी में यह दिखाया गया है कि हमारे आज के जीवन में 'पर्दे के पीछे' क्या व्यापार चलता है। हमारे आदर्शवाद, त्याग, तपस्या के पीछे कितनी प्रवंचना है। हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा की नींव कितनी पोली है। इतना ही नहीं, हमारे समाज में आदर्श और सच्चाई के नाम पर जो भी जघन्य कार्य चलते हैं उन सबका कच्चा चिट्ठा इस एकांकी में प्रस्तुत है। एकांकी की भाषा पात्रानुकूल तथा अभिव्यक्ति सक्षम है। कथोपकथन कहीं-कहीं बड़े होने पर भी स्वाभाविक गतिमयता एवं रोचकता के लिए प्रशस्त हैं। शैली प्रभावोत्पादक और व्यंग्यात्मक है जिससे एकांकी में एक नया रस आ गया है। पात्रों के मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने बड़ी पात्रानुकूल भाषा और उचित शब्दावली का प्रयोग किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

अश्क मंजे हुए एकांकीकार एवं कहानी लेखक हैं। अश्कजी
प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आपने जहां एक ओर अच्छे नाटकों की सृष्टि
है वहीं दूसरी ओर अच्छे एकाकी भी हिन्दी एकाकी-जगत् को दिये
सामाजिक दुर्बलताओ को देखने मे इनकी दृष्टि जितनी तेज है उन
व्यंग्यात्मक चित्रण करने मे इनकी लेखनी भी उतनी ही सशक्त है।
विदित होता है कि समाज के अन्तस् मे प्रवेश करके वे गवेषणा को
सक्षमता से अभिव्यक्त करते हैं। अश्कजी के एकाकी रमणीय गुणो
युक्त है। इन्होंने कुछ रेडियो प्ले भी लिखे है और श्रेष्ठ नाटक भी जिन
इनके नाटक और एकांकियो मे अभिनय गुण बढ़ता हो गया है। इन
एकाकी सग्रह 'तूफान स पहले', चरवाहा, 'देवताओं की छाया मे' आदि है
इनके प्रसिद्ध एकांकी 'लक्ष्मी का स्वागत', 'चमत्कार', 'पापी' आदि हैं

प्रस्तुत एकाकी 'लक्ष्मी का स्वागत' विषाद का गहरा भाव लिये हु
है। बड़ी ग्लानि और कड़वाहट इस एकाकी मे नियोजित है। भारती
गृहस्थ जीवन के प्रति इस एकाकी मे एक करारा व्यग्य है। एक पत्नी
मृत्यु हुई नहीं कि घर वाले अपने लडके के लिए दूसरी लड़की की तो
मे लग जाते है, पर उन्हे दूसरी बहू की भी उतनी चिन्ता नही होती
जितनी कि धन-दौलत की, जो उन्हे दहेज-स्वरूप प्राप्त होने वाली है
यही हमारे समाज का वह रूप है जिसकी ओर लेखक ने करारा व्यग
किया है। नाटक के वायुमण्डल मे निरन्तर बादलो की गड़गड़ाहट औ
बिजली की चमक है। भारी, छिपी शक्ति का भान इस नाटक
वातावरण म होता है। वस्तुत अश्क की लेखनी ने गहराई मे प्रवे
करके यह चित्र खींचा है। भाषा बड़ी मजी हुई और चुस्त है। कथोप
कथनो मे प्रवाह और सजीवता है। वे पात्रो के चरित्र के प्रकाशक है
'लक्ष्मी का स्वागत' रेडियो अनेक बार सफलतापूर्वक खेला गया है।

सेठ गोविन्ददास

सेठजी के व्यक्तित्व मे राजनीति और साहित्य का सुन्दर सम्मिश्रण

है। आपने एकांकी तथा नाटक दोनों लिखे हैं। आपके एकांकियों का विषय अधिकतर सामाजिक होता है। कथानकों का आधार वर्तमान समाज की किसी विशेष प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। इनके एकांकी कुतूहल-शून्य होकर भी नीरस नहीं हैं। पात्रों के चरित्र की मार्मिकता भी प्रायः विचार-पुष्टि के लिए ही प्रदर्शित और चित्रित की गयी है।

आधुनिक अंग्रेजी लेखकों का प्रभाव इनके व्यक्तित्व पर होने से एकांकियों में भी आ गया है। इनके प्रमुख एकांकी है—'विश्व प्रेम', 'कर्तव्य', 'सेवा पथ', 'कुलीनता', 'सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य', 'स्पर्द्धा' और 'मानव-मन'।

'मानव-मन' शीर्षक से लिखे गये एकांकी में मानव-मन की विचित्रताओं का विश्लेषण है। मन का मूलभूत स्वाभाविक प्रवाह आदर्श की कठोर शिला से टकराता है, दोनों में संघर्ष होता है और अन्ततोगत्वा मन की सहज प्रवृत्ति कठोर शिला का उच्छेदन कर अपनी गति ढूँढ लेती है। आदर्श के ऊपर मूलप्रवृत्ति (instinct) की विजय दिखायी गयी है जो उचित है, क्योंकि आदर्श तो बाह्य है, कृत्रिम है। जो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है उसका जयघोष स्वाभाविक भी है। यही इस एकांकी का विषय है।

एकांकी की नायिका पद्मा पतिपरायणा नारी है। उसका आदर्श पति-सेवा है जिसके लिए वह अपना सर्वस्व निछावर कर सकती है। उसकी भाभी अपने पति बृजमोहन की बीमारी में दो वर्ष तक सेवा और तपस्या का कठिन जीवन व्यतीत करती है, किन्तु रोग की असाध्यता उसके धैर्य को तोड़ देती है। उसकी सहनशक्ति शिथिल होती है और मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार वह पुनः क्रीडामय जीवन बिताती है। वह रेशमी ब्लाउज और रत्नजटित आभूषण धारण कर लेती है। अन्त में लेखक भारती के मुँह से मानव-मन की प्रवृत्ति बताकर एकांकी को अन्त की ओर ले जाता है।

आपने साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश किया। प्रेमीजी सर्वप्रथम कवि हैं और उसके बाद नाटककार। आपने कई उच्चकोटि के बड़े नाटक लिखे हैं। बाद में इन्होंने एकांकी नाटक भी लिखने आरम्भ किये हैं। इनके एकांकी प्रायः सामाजिक और ऐतिहासिक हैं। इनमें दो प्रकार की विचार-धाराएँ सर्वत्र मिलती हैं—एक तो राष्ट्रीय नव-निर्माण और दूसरे नैतिक आदर्शवाद। प्रत्येक एकांकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा करता है।

राष्ट्रीय नव-निर्माण के निमित्त जहाँ एक ओर आपने राजपूतों के ऐतिहासिक गौरव, अमर बलिदान, मान रक्षा को प्रतिष्ठित किया है वहीं पर कुछ एकांकियों में राष्ट्र प्रेम और स्वदेश प्रेम की भावना को अंकित किया है। प्रेमीजी ने अपने एकांकियों में जिन समस्याओं को प्राथमिकता दी है उनमें सामाजिक और राष्ट्रीय प्रमुख हैं। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत विधवा विवाह, हिन्दू समाज, शादी प्रथा, साहित्यिकों की निर्धनता, आधुनिक शिक्षा से स्त्री और पत्नी नारियों की स्वच्छन्दता-प्रियता, झूठा वैभव, पुरुषों की कठोरता, विद्यार्थी शिक्षा की हानियाँ आदि चित्रित हैं।

प्रस्तुत एकांकी 'मानव-प्रेम' प्रेमीजी का एक प्रसिद्ध एकांकी है जिसमें राष्ट्र प्रेम ने व्यक्ति प्रेम पर विजय पायी है। प्रिया ने प्रियतम को अपने यौवन और विलास रूप-कूप में डालकर देशद्रोह के पाप कुण्ड में गिरने से बचा लिया है। नारी केवल वासना की कठपुतली नहीं, त्याग की भी पावन प्रतिमा है। 'मानव प्रेम' में एक ऐसी ही नारी का चित्र है जो राष्ट्र प्रेम की भावनाओं से युक्त है और जो राष्ट्र प्रेम के निमित्त अपने प्रियतम का भी हरण कर देती है। इस एकांकी में व्यक्ति प्रेम को राष्ट्र प्रेम पर जो समर्पण चित्रित है वह अपने आप में अनूठा है। कथोपकथन और शैली बड़ी सरल और आकर्षक है।

जगदीशचन्द्र माथुर

जगदीशचन्द्र माथुर का जन्म १६ जुलाई, सन् १९१७ को हुआ था। इन दिनों आप ऑल इण्डिया रेडियो के डाइरेक्टर जनरल हैं। आप ... और एकांकी रचना ही लिखे हैं। सर्वप्रथम इनका नाटक सन् १९३

में प्रकाशित हुआ जिसका नाम 'मेरी बाँसुरी' है। इन्होंने उसके बाद अनेक एकांकी लिखे हैं जिसमें से कुछ तो सामाजिक हैं और कुछ ऐतिहासिक। अभिनय-कला के विशेषज्ञ होने से इन्होंने एकांकी को एक नयी राह दी है। ये पाश्चात्य टेकनीक के आधार पर एकांकी साहित्य का प्रणयन कर रहे हैं।

माथुर जी ने गम्भीर और विचार-प्रधान एकांकी लिखने के साथ व्यंग्य-विद्रूप से परिपूर्ण हलके-फुलके एकांकी लिखकर हिन्दी में नाटक की नवीन दिशा की ओर संकेत किया है। 'ओ मेरे सपने' शीर्षक से लिखे संकलन में माथुर साहब के पाँच एकांकी संगृहीत हैं जिनमें उद्देश्य के प्रति लेखक का कोई आग्रह नहीं है। हाँ, मनोरंजन की गहरी छाप विद्यमान है। भाषा और शैली की दृष्टि से भी श्री माथुर के एकांकी पूर्ण सफल है।

प्रस्तुत एकांकी 'भोर का तारा' माथुर साहब का एक श्रेष्ठ एकांकी है जिसमें कवि शेखर के द्वारा कर्त्तव्य के लिए प्रेम का बलिदान करना व्यंजित है। इसकी सूचना प्रथम दृश्य में होने वाले सौन्दर्य तथा कर्त्तव्य सम्बन्धी संवाद में ही दे दी जाती है। प्रारम्भ में प्रभात द्वारा रजनी बाला के सोते हुए पट के छोर में स्वर्ण कण की भाँति टँके हुए भोर के तारे की कल्पना की गयी है जो किसी पूर्व और भावी परिस्थिति का संकेत कर जाती है। कवि शेखर के एकांकी गायन में माधव का आगमन, प्रेम और सौन्दर्य की चर्चा के बीच एक भिखमंगी का प्रसंग, स्कंदगुप्त के दरबार में युवती के गायन, राजा से शेखर के बुलाने की उसकी प्रार्थना, समुद्र के संकेत, दूसरे दृश्य में वीरभद्र का विद्रोह, तोरमाण के आक्रमण की सूचना, देवदत्त की वीरगति का संदेश, काव्य शक्ति से जन-जीवन की रक्षार्थ शेखर को प्रेरित करने का प्रयत्न—सभी कुछ कथा में नया संघर्ष उत्पन्न करते हैं और कथा अपने लक्ष्य—शेखर अब तक भोर का तारा था अब वह प्रभात का सूर्य होगा—को प्राप्त कर लेती है। भाषा बड़ी मार्मिक और काव्यात्मक बन गयी है। कथोपकथन बड़े सजीव हैं। दो दृश्यों में प्रस्तुत यह एकांकी अपने भावपक्ष में जितना उदात्त है अपने कलापक्ष में उतना ही सशक्त।

भुवनेश्वर

भुवनेश्वर का हिन्दी एकांकी के विकास में महत्वपूर्ण योग है। इनका प्रसिद्ध एकांकी संग्रह 'कारवाँ' सन् १६३५ में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह एकांकी के नये प्रयोग के रूप में आया है। यहीं से वस्तुतः एकांकी को एक नयी दिशा और एक नयी राह मिलती है। 'कारवाँ' के एकांकियों की वस्तु और शैली पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। विवाह-सम्बन्धी सामाजिक रूढ़ियों पर करारा प्रहार करना ही इन एकांकियों का प्रतिपाद्य विषय है। भारतीय रूढ़ियों के विरोध में पश्चिम के प्रगतिशील नैतिक मूल्यों की स्थापना इन एकांकियों का लक्ष्य है, अतः इनमें सामाजिक समस्याओं की बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत है।

भारतीय मध्य वर्ग की नैतिकता के ढोंगी आवरण को इन नाटकों में बड़ी स्पष्टता से छिन्न किया गया है। प्रस्तुत एकांकी 'स्ट्राइक' इनका प्रसिद्ध एकांकी है। पति और पत्नी की विषम संवेदना के माध्यम से इस एकांकी में पुरुष और स्त्री की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। पुरुषों का संवाद नाटक के सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन करने में सफल सिद्ध होता है। स्त्री चरित्र के अन्तस् की गूढ़ और गम्भीर भावनाओं को इसमें प्रकट किया गया है। युवक का व्यंग्य इस चरम सीमा का स्पर्श करता है—"आइए, मेरे होटल में आइए आप। फैक्टरी में तो आज स्ट्राइक है।" मध्यवर्गीय समाज की घटना को उठाकर संवादों द्वारा उसके यथार्थ के उद्घाटन में यह एकांकी पूर्ण सफल हुआ है। यह एकांकी यदि एकांकीकार की कला का प्रतिनिधि एकांकी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। भाषा पात्रानुकूल है और संवादों में गति है, स्थिरता नहीं।

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा कविता, कहानी, उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त समझे जाते हैं। 'मधुकण', 'प्रेमसंगीत', 'एक दिन' आदि आपकी काव्य पुस्तकें हैं। 'चित्रलेखा' और 'तीन वर्ष' अच्छे उपन्यास हैं। 'इन्स्टालमेन्ट' आपका सुन्दर, सफल कहानी संग्रह है।

एकांकी क्षेत्र में आपका प्रयत्न सराहनीय रहा है। 'सबसे बड़ा आदमी' और 'मैं और केवल मैं' आपके प्रसिद्ध एकांकी हैं। आदर्श और यथार्थ का सघर्ष आप बड़ी कुशलता से चित्रित करते हैं।

प्रस्तुत एकांकी 'मैं और केवल मैं' में लेखक ने मानव के स्वार्थ का यथार्थ चित्र खींचा है। आज की दुनिया में अपनी सुख, समृद्धि में तल्लीन पुरुष को दूसरो के दर्द की बातें सुनना तो दूर सोचने का भी अवकाश नहीं है। सहानुभूति दिवालिया हो गयी है और सहयोग दुम दबाकर भाग गया है, इसलिए सहानुभूति भी कृत्रिम हो गयी है। वह सर्वथा वाचिक है। एकांकी के प्रायः सभी पात्र स्वार्थी संसार के प्राणी हैं। रामेश्वर भावुक और आदर्शवादी है। रामेश्वर के दुख में उसके साथी उसके साथ मौखिक सहानुभूति प्रगट करने की भी परवाह नहीं करते हैं। इसके विपरीत उसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए सभा के विरुद्ध टॉमसन के पास भेजना चाहते हैं। परमानंद उनके स्वार्थ का शिकार बन जाता है, परन्तु उसकी विपत्ति में उनमें से कोई भी उसकी सहायता के लिए तत्पर नहीं है। दूसरों को दुःखी करके अपने सुख-संपादन को ही वे मानवता का मूल-मंत्र मानते हैं।

'मैं और केवल मैं' में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से संसार की कठोर निर्ममता के प्रति अत्याचार और स्वार्थ प्रवंचना के विरुद्ध कटु बातें कही गयी हैं। इसमें सहानुभूति कहीं नहीं, यदि है भी तो निम्नस्तरीय वर्ग में। महँगू चपरासी सहानुभूति का प्रतीक है। यद्यपि कथानक में कुतूहल का अभाव है फिर भी कथावस्तु में शैथिल्य नहीं। भाषा प्रवाहयुक्त, स्वाभाविक तथा मुहावरेदार है। कहीं-कहीं आवेशपूर्ण संभाषण में कवित्व की छाया भी वर्तमान है।

विष्णु प्रभाकर

विष्णु प्रभाकर पुराने कथाकार हैं। पहला नाटक 'हत्या के बाद' १९३९ में लिखा। अश्क के शब्दों में "इधर आपकी कला में अभूतपूर्व निखार आ गया है। यथार्थ की अपेक्षा आप आदर्शोन्मुख हैं। मानव प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके उनमें आध्यात्मिक पुट देना आपकी अपनी विशेषता है।" भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। शैली में गति और

चुकी है। रेडियो नाटक के क्षेत्र में आपको विशेष सफलता मिली है

श्री विष्णु प्रभाकर के एकांकियों को छह वर्गों में बाँटा जा स
है—१. सामाजिक समस्या एकांकी, २. मनोवैज्ञानिक एकांकी, ३. रा
नैतिक एकांकी जिनमें राष्ट्रीय गौरव के चित्र चित्रित हैं, ४. हास्य-व्यं
प्रधान एकांकी, ५. पौराणिक, ऐतिहासिक एकांकी, ६. प्रचारात्मक एक
जिनमें देश की आर्थिक, सामाजिक और विशेषतः गाँधीवादी विचारध
का चित्रण है।

प्रस्तुत एकांकी 'विभाजन' में पारिवारिक जीवन का सफल चि
जो आत्मोत्सर्ग, प्रेम और करुणा का वाहक है। मानव सम्पत्ति या
दौलत का विभाजन तो कर सकता है, पर हृदय-दुनिया पर विभा
रेखा खींचना संभव नहीं है। भाई-भाई, पिता या बाप-दादे की सम्प
विभाज्य है, पर देवर-भाभी की आन्तरिक स्नेह की ग्रंथियाँ अविभा
हैं। उनकी हृदय वेदना आँखों में छलक हो आयी।

कथोपकथन बड़े सजीव, संक्षिप्त और प्रभावोत्पादक हैं। उनकी भा
भी माधुर्य से पूर्ण है। उदाहरणस्वरूप :

देवराज—भाभी ! कल पहली तारीख है। महेश को रुपये भेजने
वही लाया हूँ।

भगवती—महेश को तो रुपये मैं भेज चुकी !

देवराज—परन्तु आधे रुपये तो मैं देता हूँ।

आदि कथोपकथन बड़े प्रभावशाली और युक्तियुक्त हैं। भाषा सर
और मधुर है। उसमें सरलता का गुण पाठकों को मोह लेता है।

जयनाथ नलिन

जयनाथ नलिन का जन्म सन् १९१२ में हुआ था। प्रारंभ
ही आपका जीवन साहित्यिक स्पर्श से युक्त रहा। सन् १९३५ से इन्हों
पत्रकार के रूप में कार्य किया। तदनन्तर कुछ दिनों लाहौर औ
दिल्ली के अनेक दैनिक पत्रों का संपादन करते रहे। कुछ दिनों फिल्
दुनिया का अनुभव प्राप्त कर अध्यापन क्षेत्र में आये हैं।

नलिनजी ने अनेक आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं। आचार्य शुक्ल

के ऊपर आलोचना लिखी है। इनकी अनेक रचनाएँ अब तक प्रकाश में आ चुकी हैं जैसे—'धरती के बाल', 'हाथी के दाँत', 'टीली की चमक', 'जवानी का नशा' आदि। भाषा-शैली मे हास्य-व्यंग्य का पुट वर्तमान रहता है इसलिए हास्य-व्यग्य लेखकों मे आपका अपना स्थान है। इन्हे गुजराती, मराठी, बँगला, अंग्रेजी आदि का भी अच्छा ज्ञान है।

प्रस्तुत एकांकी 'संवेदना-सदन' अपने ढंग का एकाकी है जिसमे एक ओर व्यंग्य प्रवृत्ति प्रधान हो उठी है तो दूसरी ओर हास्य की प्रवृत्ति। 'संवेदना-सदन' शीर्षक ही अपने आप मे हास्य-व्यग्य की सृष्टि करता है। इसमे बताया गया है कि शोक मनाने के लिए मण्डलियाँ होती हैं जो पैसे लेकर शोक करती हैं, रोती हैं। 'संवेदना-सदन' एक ऐसा ही एकांकी है। इसी शोक-सदन मे व्यंग्य भी बड़ा करारा किया गया है जैसे—

"करुणा—हिश् पगली! गंजा नहीं, चाहे अन्धा हो, काना हो, ऐंचाताना हो, पर कहना यही, कमलनैन कटार-सी आँखें और नरगिस की आँखें, गुण-गान ही किया जाता है, इससे शोक मे सघनता आ जाती है। मरने वाले का मूल्य भी बढ़ जाता है।"

और हास्य—"रोने की सैकड़ो शैलियाँ हैं, अनेक प्रकार हैं, अनगिनत राग-रागनियाँ। कभी दर्दीले, कभी नराने, कभी शोक के गाने……… मैं तो सच, बहनजी, इतनी वैरायटी उपस्थित करूँ कि बड़े-बड़े सगीताचार्य भी बगलें झाँकने लगें।"

भाषा मधुर, हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली और कथोपकथन चुभते और गुदगुदाते हुए हैं। भाषा में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

एक तोले अफीम की कीमत

डा. रामकुमार वर्मा

एक तोले अफीम की कीमत

डा. रामकुमार वर्मा

पात्र

मुरारी मोहन बी.ए.	: नये विचारों का नवयुवक, लाला सीताराम का पुत्र
लाला सीताराम	: अफीम के व्यापारी
कुमारी विश्वमोहिनी	: एनी बेसेंट कालेज में सेकण्ड ईयर की छात्रा
रामदीन	: लाला सीताराम का नौकर
जोखू	: चौकीदार

[समय—रात के दस बजे के बाद। लाला सीताराम की दुकान में एक सजा हुआ कमरा। एक बड़ा टेबुल, जिस पर कागज, कलम, दवात आदि सुसज्जित हैं। टेबुल के आस पास दो-तीन कुर्सियाँ रखी हुई हैं। बगल में एक बेंच जिस पर कार्पेट बिछा हुआ है। दीवाल पर दो-तीन फोटो लगे हुए हैं, जिनमें एक मकान के मालिक सीताराम का और दूसरा उनकी पत्नी का है, जो अब इस संसार में नहीं हैं। तथा दोनों के बीच में श्री लक्ष्मीजी का चित्र लगा हुआ है। दाहिनी ओर एक साइनबोर्ड है, जिसमें 'लाला सीताराम—अफीम के व्यापारी' लिखा हुआ है। दीवाल पर कुछ ऊँचाई से एक क्लॉक टँगा हुआ है जिसमें दस बजकर पन्द्रह मिनट हुए हैं। क्लॉक के बगल में एक कैलेंडर है।

मुरारी मोहन लाला सीताराम का लड़का है—नये विचारों में पूर्ण रीति से रंगा हुआ। वह इसी वर्ष बी.ए. पास हुआ है। उम्र २१ वर्ष, देखने में सुन्दर। साफ कमीज और धोती पहने हुए है। टेबुल पर बिखरे हुए कागज ठीक करने के बाद वह कुर्सी पर बैठकर अखबार देख रहा है। चिन्ता की गहरी रेखाएँ उसके मुख पर देखी जा सकती हैं। वह किसी समस्या के सुलझाने में व्यस्त मालूम देता है। दो-एक बार अखबार से नजर उठाकर दीवाल की ओर शून्य में देखने लगता है।]

मुरारी मोहन—[एक क्षण अखबार की ओर देखकर पुकारते हुए] रामदीन!

रामदीन—[बाहर से] सरकार !

[रामदीन का प्रवेश । घुटने तक धोती, गंजी और पगड़ी पहने है। बातूनी है लेकिन है समझदार। आकर नम्रता से खड़ा जाता है।]

मुरारी मोहन—रामदीन ! बाबूजी जाते वक्त कुछ कह गये हैं ?

रामदीन—[हाथ जोड़कर] कोई खास बात नहीं सरकार ! य रहे कि मुरारी भैया को देखते रहना। तकलीफ न हो, नहीं तो रामद तुम जानो—ऐसन कहत रहे सरकार !

मुरारी मोहन—[लापरवाही से] ऐसा कहा ? [हंसकर] हूंअ, मुझे क्या तकलीफ होगी रामदीन ? कब आने को कहा है ?

रामदीन—सरकार, परसों साम के कहा है। बहुत जरूरी काम नाहीं तो काहे जाते सरकार ?

मुरारी मोहन—परसों आएंगे ? कौन तारीख है ? [कैलेंडर और देखता है] १५ जुलाई ! [ठंडी सांस लेकर] खैर !

रामदीन—[मुरारी को चिन्तित देखकर] सरकार, जल्दी का खतम हो जाय तो जल्दी आय जायं। कोई बात है सरकार ?

मुरारी मोहन—[लापरवाही से] कोई बात नहीं। बाबूजी गये कि लिए हैं, तुम्हें मालूम है ?

रामदीन—[हाथ झुलाकर] ए लो सरकार, आप लोग न जानें हम गरीब मनई सरकार के काम को का समझें ? हां कहत रहे कि अफीम अब बड़ाय गई है। गाजीपुर म नवा कारबार चालू भवा है। वहीं बड़े जाना पड़ गवा।

मुरारी मोहन—मुझसे तो बातें हो न हो सकीं। मैं समझा, सिर्फ से कुछ तय करने के लिए गये हैं। मेरी आजकल कुछ ज्यादा फिक्र मालूम होती है।

रामदीन—काहे न होय सरकार ? अब आपै तो हैं और कौन है, सरकार !

मुरारी मोहन—अच्छा [घड़ी की ओर देखकर] रामदीन ! अब जाओ तुम। हम अब सूंगे।

रामदीन—सरकार हमका तो हुकुम है कि—यहीं दूकान में सोना। सरकार!

मुरारी मोहन—नहीं जी, तुम घर जाओ। मैं तो हूं। मैं कोई बच्चा नहीं हूँ। मैं अकेला ही सोऊँगा। किसी का डर है क्या? और फिर चौकीदार तो है ही?

रामदीन—सरकार, नाराज होअँगे, सरकार, मैं भी यहीं पड़ रहौंगा।

मुरारी मोहन—क्यों क्या तुम्हारे घर मे कोई नहीं है?

रामदीन—है काहे नाहीं सरकार! तेजी है, तेजी कै माँ है। ओकरे तबियत सरकार, कल्हि से कछु दिक है।

मुरारी मोहन—तब तो तुमको जाना चाहिए।

रामदीन—हाँ सरकार, बहुत दिक है। मुदा बड़े सरकार नाराज...

मुरारी मोहन—नहीं, मैं कह दूँगा! यह क्या बात कि घर मे लोग बीमार हों और तुम यहीं पड़े रहो।

रामदीन—[हाथ जोड़कर] वाह सरकार, आप दीन-दयालू हैं। काहे न होय सरकार? आप तो दीन की परवस्ती......

मुरारी मोहन—खैर, यह कोई बात नहीं।

रामदीन—[हाथ जोड़कर] तो सरकार मैं [रुककर] जावँ...?

मुरारी मोहन—हाँ, सुबह जरा जल्दी आ जाना।

रामदीन—बहुत अच्छा, सरकार! सरकार की का बात...!

[रामदीन अपना बिस्तरा उठाकर जाने को तैयार होता है।]

मुरारी मोहन—[सोचता हुआ] क्यों जी रामदीन, तुम्हारी शादी कब हुई थी?

रामदीन—[संकुचित होते हुए] हैं, हैं, सरकार सादी? तेजी कै माँ की शादी? सरकार, जमाना गुजर गवा। [बिस्तरा जमीन पर रखता हुआ] अब तो तेजी कै सादी कै फिकर है। सरकार, आपइ करेंगे। [दाँत निकालता है]।

मुरारी मोहन—अच्छा, बहुत दिन बीत गये! और रामदीन, तुमने शादी के पहले तेजी की माँ को देखा तो होगा?

रामदीन—राम कहो, सरकार, हम तो उई का तब जाना जब तेजी का जनम होय का बखत आवा। सरकार, मरे पर माँ कौन केरा देखत है ? माँ-बाप सबै तो रहैं। जब लौं तेजी कै माँ ने मुलाकात का बखत आवै तब लौं घर में अंधियार होय जात रहा। और सरकार, आपन मेहरिया का मुँह देखै से का ? देखा तौ ठीक, न देखा तौ ठीक। जब ऊ का अनताय निहिन तब सरकार, भली-बुरी सबै ठीक है। है, है !

[नम्रता और हास्य का मिश्रण]

मुरारी मोहन—बड़ा ज्ञानी है। और ये शादी लगायी किसने थी ?

रामदीन—अब सरकार, बापै लगाइन, हमार काहे माँ गिनती ? ऊ हमरा पहचाइन—सब ठीक है। हमहूँ आपन मुंहिया हलाय दिहिन। सादी के बात तो सरकार बापै के हाथ में रहा चाही। ऊ कहिन कै रामदीन के सादी होई हम समझा ठीक है। तौ सादी न करत ? सरकार !

मुरारी मोहन—तुम लोग क्या समझो कि शादी किसे कहते हैं ?

रामदीन—सरकार, आप लोग पढ़े-लिखे हन। जब आप न जानो तौ का हम जानी ? हमार सादी तो सरकार, गुजर-बसर के लायक है। आप लोगन की सरकार दजगार जैसन सादी होवत है। अब तौ सरकारौ कै सादी होई। हाँ। [सिर हिलाता है]

मुरारी मोहन—[दृढ़ता से] मेरी शादी नहीं होगी रामदीन—अच्छा अब जाओ तुम।

रामदीन—काहे न होई सरकार !

मुरारी मोहन—कुछ नहीं, तुम जाओ।

रामदीन—सरकार के सादी तो अस होई कि सगर दुनिया धरफराय जाई। अच्छा तौ सरकार जाई नू ? राम-राम ! [कमरे में लगी हुई लक्ष्मी जी की तसवीर को भी प्रणाम करके जाता है।]

मुरारी मोहन—[व्यंग से] बड़ा भगत है।

[रामदीन के जाने पर मुरारी मोहन कुछ क्षणों तक दरवाजे की ओर देखता हुआ बैठा रहता है। फिर उठकर दरवाजा ऊपर से और एक क्षण खड़े रहकर सोचते हुए नीचे से भी बन्द करता है। दो लैम्पों में एक लैम्प बुझा देता है। कुछ देर सोचता है।]

मुरारी मोहन—अब ठीक है ! पीछा छूटा शैतान से। यही सोना चाहता था ! बाबूजी का मुँहलगा नौकर है न ? अब बेखटके अपना काम करूँगा। [सोचता है] मेरी शादी······शादी होगी ! किसी जंगली जानवर से ! अब सह नहीं सकता ! बाबूजी सोचते क्यों नहीं कि हम लोगों के पास भी दिल होता है ! हम लोग भी हसरत रखते हैं। मालूम हो जाएगा कि मैं सच कहता था या मजाक करता था। मेरी लाश बतलाएगी। ठीक है···आज आत्महत्या करनी ही होगी, तभी मेरा पीछा छूटेगा······किस्मत की बात कि दुकान की सब अफीम खत्म हो जाए लेकिन क्या मुरारी अपने काम में चूक सकता है ? एक तोला अलग निकालकर रख ही तो ली। [मेज के ड्राअर से अफीम निकालता है।] यह है ! मैं ग्रेजुएट हूँ। पिताजी के कहने से मैं अपने 'कल्चर' को 'किल' नहीं कर सकता। 'मैरिज इज एन ईवेन्ट इन लाइफ।' वह गुड़ियों की शादी नहीं है। वे दिन गये जब रामदीन की शादी हुई थी। [सोचता है] 'इट इज बेटर टु किल वन् सेल्फ देन टु किल वन्स सोल।' बहुत 'रिवोल्ट' किया, लेकिन कुछ नहीं। अब सुबह लोग देखेंगे कि मुरारी अपने विचारों का कितना पक्का है······! मेरी लाश की शादी करेंगे उसी अनकल्चर्ड लड़की के साथ। ओफ् कितना दर्द है ! [अपनी माँ की फोटो की ओर देखकर] माँ, तुम तो दुनिया में नहीं हो, नहीं तो मुमकिन है कि अपने मुरारी को बचा सकतीं। अच्छा तो मैं भी सुबह तक तुम्हारे पास पहुँचता हूँ। तो अब······[सोचता है] खा जाऊँ ? [कुर्सी पर बैठकर अफीम की पुड़िया खोलता है। थोड़ी देर सोचता है] नहीं, बेंच पर लेट कर खाना अच्छा होगा। लोग समझेंगे कि मैं सो रहा हूँ। जगाने की कोशिश करेंगे। मजा आएगा। लेकिन मुझे क्या !! [बेंच पर लेटता है और गोली ऊपर उठाता है।] मुरारी तुम भी अपने विचारों के कितने पक्के हो ! अपने सिद्धान्तों के लिए जिन्दगी को ठोकर मार दी ! अब खा जाऊँ ? वन्, टू [उठकर] अरे ! मैंने पत्र तो लिखा ही नहीं। मेरे मरने के बाद मुमकिन है, पुलिस वाले बाबूजी को तंग करें ! करने दो, मुझे भी तो उन्होंने तंग किया है ! [सोचकर] लेकिन नहीं, मरने के बाद भी क्या दुश्मनी ! अच्छा लिख दूँ [अफीम की गोली को मेज पर

मुरारी मोहन—आप कौन हैं ?

विश्वमोहिनी—लाला सीतारामजी यहाँ हैं ?

मुरारी मोहन—बाहर गये हुए हैं।

विश्वमोहिनी—बाहर गये हुए है ? [सोचते हुए कुछ धीरे-से] अच्छा है, वे नहीं हैं।

मुरारी मोहन—[दुहराते हुए] अच्छा है, वे नहीं हैं ? क्या मतलब ?

विश्वमोहिनी—कुछ नहीं।

मुरारी मोहन—किस काम से आप आयी हुई हैं ?

विश्वमोहिनी—मुझे कुछ अफीम चाहिए।

मुरारी मोहन—आपको ? क्यों ?

विश्वमोहिनी—जरूरत है। बहुत जरूरत है।

मुरारी मोहन—दुःख है, सारी अफीम खत्म हो गयी। बाबूजी उसी के लिए गाजीपुर गये हुए हैं।

विश्वमोहिनी—कब तक लौटकर आएँगे ?

मुरारी मोहन—परसों।

विश्वमोहिनी—परसों ? बहुत देर हो जाएगी। [अनुनय के स्वरों में] थोड़ी भी नहीं है ? कुछ तो जरूर होगी। मुझे बहुत जरूरत है।

मुरारी मोहन—इस समय ? आधी रात को ?

विश्वमोहिनी—हाँ, मेरी माताजी बीमार हैं। अफीम खाती हैं। उनकी सारी अफीम खत्म हो गयी है। उन्हें नींद न आने से उनकी तबीयत और भी खराब हो जायगी।

मुरारी मोहन—मुझे बहुत दुःख है, लेकिन अफीम तो नहीं है।

विश्वमोहिनी—[नम्रता से] देखिए, आपकी मुझ पर बड़ी कृपा होगी यदि आप खोजकर थोड़ी-सी दे दें। इतनी बड़ी दूकान में क्या थोड़ी-सी भी अफीम न होगी ?

मुरारी मोहन—[सोचते हुए] अच्छा, बैठिए खोजता हूँ। [मेज की दराज खोलता है, दराज की ओर देखते हुए] आपका परिचय ?

विश्वमोहिनी—[कुरसी पर बैठते हुए] परिचय और अफीम से क्या सम्बन्ध ?

मुरारी मोहन—आपका नाम लिखना होगा। अफीम देते वक्त नाम ना होता है।

विश्वमोहिनी—अच्छा, नाम लिखना होगा? [कुछ ठहरकर] तो मुझे नहीं चाहिए।

मुरारी मोहन—इसमें हिचकने की क्या बात है? आप तो अपनी ाजी के लिए ले जा रही हैं! [दराज बन्द करता है]

विश्वमोहिनी—हाँ, हाँ, मैं उन्हीं के लिए ले जा रही हूँ। लेकिन दीजिए, मैं फिर मँगवा लूंगी।

मुरारी मोहन—लेकिन आप तो कह रही हैं कि आपकी माताजी को अफीम चाहिए। बिना इसके उन्हें नींद न आएगी।

विश्वमोहिनी—हाँ, नींद नहीं आएगी। खैर, लिख लीजिए मेरा। [धीरे से] मुझे चिन्ता किस बात की?

मुरारी मोहन—क्या कहा आपने?

विश्वमोहिनी—कुछ नहीं।

मुरारी मोहन—क्या नाम है आपका?

विश्वमोहिनी—विश्वमोहिनी।

मुरारी मोहन—[एक कागज पर लिखते हुए] नाम तो बहुत सुन्दर ! क्या आप पढ़ती हैं?

विश्वमोहिनी—जी हाँ, एनी बेसेंट कालेज में सेकण्ड ईयर में पढ़ती हूँ।

मुरारी मोहन—[लिखता है] अच्छा, आपके पिताजी?

विश्वमोहिनी—कुछ और बतलाने की जरूरत नहीं है। आपके ताजी मेरे पिताजी को अच्छी तरह जानते हैं। लाइए दीजिए अफीम, झे जल्दी चाहिए। माँ की तबीयत खराब है। देर हो रही है।

मुरारी मोहन—अच्छा, तो कितनी चाहिए?

विश्वमोहिनी—इससे मालूम होता है कि अफीम काफी है। यही क तोला बहुत होगी। ...... हाँ एक तोला। [सोचती है]

मुरारी मोहन—एक तोले का क्या कीजिएगा? [आश्चर्य से देखता है।]

विश्वमोहिनी—क्या एक तोले से कम में काम चल जाएगा?

मुरारी मोहन—आपकी बातें कुछ समझ में नहीं आ रही हैं।

विश्वमोहिनी—अच्छा, तो एक तोला ही दे दीजिए।

मुरारी मोहन—शायद मेरे पास एक ही तोला है। मुझे भी उसकी कुछ जरूरत है। पर मालूम होता है 'योर नीड इज ग्रेटर दैन माइन।' अच्छा तो लीजिए। [आलमारी से निकालकर पुड़िया में एक गोली देता है। आलमारी बन्द करता है।]

विश्वमोहिनी—[शीघ्रता से लेकर] धन्यवाद, एक ही तोला है? कितने की हुई?

मुरारी मोहन—यों ही ले लीजिए, आपसे कुछ न लूँगा।

विश्वमोहिनी—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

मुरारी मोहन—आपने मन में इतनी तकलीफ की है। फिर आपकी माँ की तबियत खराब है, उनके लिए चाहिए। आपसे कुछ न लूँगा।

विश्वमोहिनी—[टेबुल पर एक रुपया रखते हुए] मैं अपने ऊपर ऋण नहीं छोड़ सकती।

मुरारी मोहन—आप यह क्या कह रही हैं?

[विश्वमोहिनी एक क्षण में वह गोली खा लेती है। मुरारी हाथ से रोकने की व्यर्थ चेष्टा करता है। विश्वमोहिनी गिरना चाहती है। मुरारी सम्हालकर बेंच पर लिटाता है। स्वयं पास की कुरसी पर बैठ जाता है।]

मुरारी मोहन—[व्यग्रता से] यह क्या किया?

विश्वमोहिनी—[शिथिलता से] आत्महत्या!

मुरारी मोहन—अरे तो मेरे यहाँ क्यों?

विश्वमोहिनी—[शान्ति से] आप पर कोई आँच न आएगी। मैंने पत्र लिखकर रख छोड़ा है। [एक पत्र निकालकर देती है।] घर में मरने की जगह नहीं है। इतने लोग भरे हैं। चौबीस घण्टों का साथ। डाक्टर बुलाकर वे लोग मुझे मरने न देते। इसीलिए आपके यहाँ आना पड़ा।

मुरारी मोहन—मैं भी तो डाक्टर बुलवा सकता हूँ?

विश्वमोहिनी—ओह, ईश्वर के लिए—मेरे लिए—मत बुलवाइए!

मुरारी मोहन—[लापरवाही से] न बुलवाऊँ ? आपका यह पत्र पढ़ सकता हूँ ? [विश्वमोहिनी आँखों में स्वीकृति देती है।]

मुरारी मोहन—[पत्र पढ़ता है] 'पिताजी ! धृष्टता क्षमा कीजिए। विवाह के लिए आपको अपनी सारी जमींदारी बेचनी पड़ती। ६०००) आप कहाँ से लाते ? आप तो भिखारी हो जाते। इससे अच्छा यही है कि मैं भगवान् की शरण में जाऊँ। अब आप निश्चिन्त हो जाइए। आह, यदि मेरे बलिदान से हिन्दू समाज की आँखें खुल सकती ! आपकी, विश्वमोहिनी।' [गहरी साँस लेकर] कितनी भयानक बात !

विश्वमोहिनी—क्षमा कीजिए। लेकिन मेरी मृत्यु की आवश्यकता है। हिन्दू समाज बहुत भूखा है। [कुछ रुककर] ओह, आप कितने कृपालु हैं। मेरी अन्तिम इच्छा आपने पूरी की। मेरी आपसे एक और प्रार्थना है।

मुरारी मोहन—बतलाइए।

विश्वमोहिनी—आपका विवाह हो गया ?

मुरारी मोहन—जी नहीं।

विश्वमोहिनी—तो सुनिए, जब आप विवाह करें तो अपने विवाह में दहेज का एक पैसा न लें। किसी बालिका के पिता को भिखारी न बनाएँ। आप मेरी प्रार्थना मानेंगे ?

मुरारी मोहन—मानूँगा, जरूर मानूँगा।

विश्वमोहिनी—ओह, आप कितने अच्छे हैं ! मैं अपने प्रथम और अन्तिम मित्र का नाम जान सकती हूँ ?

मुरारी मोहन—धन्यवाद ! मेरा नाम मुरारी मोहन है।

विश्वमोहिनी—कितना अच्छा नाम है। मुरारी मोहन······मुरारी मोहन······विवाह में एक पैसा न लेना, मुरारी मोहन !

मुरारी मोहन—लेकिन मैं विवाह करना ही नहीं चाहता।

विश्वमोहिनी—क्यों ?

मुरारी मोहन—[सोचता है] जब आपने अपना सारा रहस्य मेरे सामने खोल दिया है तब अपनी बात कहने में मुझे भी क्या संकोच ? देखिए, पिताजी मेरा विवाह बेपढ़ी और गँवार लड़की से करना चाहते हैं।

विश्वमोहिनी—अपने पिताजी को आप समझा नहीं सकते ?

मुरारी मोहन—पिताजी समझना ही नहीं चाहते। इसी से मैं भी आज ही—अभी ही—आत्महत्या करने जा रहा था। इसी बेंच पर जिस पर आप लेटी हैं।

विश्वमोहिनी—[चौंककर] तो मैं······?

मुरारी मोहन—[बीच ही में] मैं तो मरने जा ही रहा था कि आप आ गयीं।

विश्वमोहिनी—आत्महत्या न करना मुरारी मोहन ! मैं ही अकेली काफी हूँ। [कुछ रुककर] लेकिन अफीम······अफीम का कुछ असर मुझे मालूम नहीं पड़ रहा अभी तक !

मुरारी मोहन—तो जल्दी क्या है ?

विश्वमोहिनी—मैं जल्दी मरना चाहती हूँ। अफीम का असर क्यों नहीं हो रहा ?

मुरारी मोहन—न होने दीजिए।

विश्वमोहिनी—अफीम खाऊँ और उसका असर न हो ?

मुरारी मोहन—[लापरवाही से] असर क्यों होगा ? आपने अफीम खायी ही कहाँ है ?

विश्वमोहिनी—[चौंककर] नहीं ? अरे ? तो क्या आपने मुझे अफीम नहीं दी ?

मुरारी मोहन—नहीं। मैं जानता था कि आप आत्महत्या करने जा रही हैं। मैं ऐसे को अफीम क्यों देता ? मैंने नहीं दी।

विश्वमोहिनी—[विस्फारित नेत्रों से] तो फिर क्या दिया ? उठकर बैठ जाती है।

मुरारी मोहन—काली हर्रे की एक गोली। [आलमारी की ओर संकेत करता हुआ क्रीडा पूर्वक] बाबूजी की दवाओं की आलमारी से।

विश्वमोहिनी—[किंचित क्रोध से] आप बड़े वैसे हैं। आप मेरा अपमान करना चाहते हैं ? मैं मरना ही चाहती हूँ। मुझे अफीम चाहिए।

मुरारी मोहन—[जैसे बात सुनी हो नहीं] अफीम के बदले हर्रे की गोली ! जरा मेरी सूझ तो देखिए !

विश्वमोहिनी—रखिए अपने पास आप अपनी सूझ। इस समय शहर की सब दूकानें बन्द हो गयी हैं नहीं तो मैं आपकी अफीम की परवा भी न करती।

मुरारी मोहन—तो न करें।

विश्वमोहिनी—लेकिन मुझे अफीम चाहिए।

मुरारी मोहन—[खड़े होकर] देखिए ! सिर्फ एक तोला अफीम बाकी है जो दराज में रखी हुई है। [दराज की ओर संकेत] अगर मैं वह आपको दे दूं तो फिर मैं ['मैं' पर जोर] आत्महत्या किस चीज से करूंगा ?

विश्वमोहिनी—आप ? आप आत्महत्या नहीं कर सकते। मैं करूंगी।

मुरारी मोहन—नहीं, मैं करूंगा।

विश्वमोहिनी—यह हो ही नहीं सकता। आपकी परिस्थितियाँ सुधर सकती हैं, मेरी नहीं।

मुरारी मोहन—नहीं, आपकी परिस्थितियाँ सुधर सकती हैं, मेरी नहीं। उठाइए अपना यह रुपया।

विश्वमोहिनी—नहीं, दीजिए मुझे अफीम।

मुरारी मोहन—नहीं दूंगा।

विश्वमोहिनी—नहीं देंगे तो मैं······

मुरारी मोहन—क्या करेंगी आप ?

विश्वमोहिनी—[मुट्ठी बांधते हुए विवशता से] ओह मैं क्या करूं ? [उठकर दराज खोलना चाहती है।]

मुरारी मोहन—[रोकते हुए] मुझे माफ कीजिए। जरा आप अपने को सम्हालिए 'हैव पेशेन्स एण्ड सेन्स।' सब मामला सुलझ जाएगा।

विश्वमोहिनी—कैसे ? [बैठती है] नहीं सुलझ सकता। संसार स्वार्थी है, पापी है। नहीं।

मुरारी मोहन—सारा संसार स्वार्थी नहीं है, पापी नहीं है, शान्त हो देखिए। उठाइए यह रुपया।

विश्वमोहिनी—अच्छा, आप आत्महत्या तो न करेंगे ?

मुरारी मोहन—तो क्या करूं ?

विश्वमोहिनी—मैं क्या जानूं ?

मुरारी मोहन—तो आप एक काम कर सकती हैं। आपके पिताजी मेरे पिताजी को जानते ही हैं। उनके द्वारा मेरे पिताजी से कहला दें कि अगर मैंने कभी शादी की तो मैं बिना दहेज के करूंगा। यदि ऐसा न होगा तो इस समय तो नहीं उस समय अवश्य आत्महत्या कर लूंगा।

विश्वमोहिनी—अवश्य। मुझे विश्वास है कि मेरे पिताजी का कहना आपके पिताजी जरूर मान जाएँगे। नहीं तो उनको ऐसी घटनाएँ देखने के लिए तैयार रहना चाहिए।

मुरारी मोहन—अच्छा तो उठाइए, अपना यह रुपया। हर्रे की क्या कीमत ?

विश्वमोहिनी—[रुपया उठाकर] अच्छा लीजिए। [सोचती है।] यह बतलाइए कि आपको यह कैसे मालूम हुआ कि मैं आत्महत्या करने के लिए अफीम ले रही हूँ। मैंने तो अपनी माँ की बीमारी की ही बात कही थी।

मुरारी मोहन—मैं जानता था। आपकी उलटी-उलटी-सी बातें, दाम देने से इनकार करना वगैरह, वगैरह। कुछ इस ढंग से आपने कहा कि मुझे शक हो गया। अफीम खाने के लिए अनुभव की जरूरत है। कच्चा आदमी खा ही नहीं सकता, मैं जानता हूँ। मैंने आपको हर्रे की गोली दे दी, आपने ले ली। अफीम और हर्रे में कोई तमीज ही नहीं।

विश्वमोहिनी—और आपको वक्त पर हर्रे की गोली भी मिल गयी!

मुरारी मोहन—मिलती क्यों न ? आत्महत्या करने वालों से कभी-कभी ईश्वर भी डर जाता है। [हास्य]

[चौकीदार की आवाज सड़क पर होती है—'जागते रहो।']

मुरारी मोहन—चौकीदार कह रहा है—जागते रहो। और कितनी देर जागते रहें ? ग्यारह तो बज गये होंगे।

विश्वमोहिनी—जीवन भर....

मुरारी मोहन—जीवन ! कितना बड़ा जीवन ! दुःख-दर्द से भरा

हुआ। पढ़ने की चिन्ता, कमाने की चिन्ता, स्त्री की चिन्ता, प्रेम की चिन्ता···[चौंककर] ओह, मैं कहाँ की बात ले बैठा! हाँ, मैं आपको आपके मकान पर भिजवा दूँ।

विश्वमोहिनी—चली जाऊँगी। नौकरानी को बाहर बरामदे में छोड़ आयी हूँ।

मुरारी मोहन—शायद इसलिए कि आपकी आत्महत्या की खबर लेकर घर जाती।

विश्वमोहिनी—हाँ, लेकिन जैसा मैंने कहा—आप पर आँच न आती। उसकी गवाही और मेरा पत्र आपको निरपराध ही साबित करते।

मुरारी मोहन—तो क्या आपकी नौकरानी को मालूम था कि आप आत्महत्या करने जा रही हैं?

विश्वमोहिनी—बिलकुल नहीं। लेकिन वह यह कह सकती थी कि मैं यहाँ अपने मन से आयी थी। आप तो निरपराध ही रहते। यही साबित होता।

मुरारी मोहन—धन्यवाद! अब क्या साबित होता?

विश्वमोहिनी—यही कि आप इतने कृपालु हैं······

मुरारी मोहन—[बीच ही में] कि आधी रात तक किसी को रोक सकता हूँ। अच्छा ठहरिए। मैं इन्तजाम करता हूँ। [पुकारता है] चौकीदार!

चौकीदार—[बाहर से] आया हुजूर!

विश्वमोहिनी—चौकीदार को क्यों पुकार रहे हैं?

मुरारी मोहन—आपको गिरफ्तार करने के लिए, पुलिस में खबर भेजना है। आप आत्महत्या करना चाहती थीं।

विश्वमोहिनी—बुलाइए पुलिस को। मैं भी आपको गिरफ्तार करा दूँगी। आप भी आत्महत्या करना चाहते थे। अफीम आपके पास है या मेरे पास?

मुरारी मोहन—मेरी तो अफीम की दूकान ही है। साइनबोर्ड देख लीजिए [साइनबोर्ड की तरफ इशारा करता है]—लाला सीताराम अफीम के व्यापारी। [चौकीदार का प्रवेश।]

चौकीदार—[सलाम करता है।] कहिए हुजूर !

मुरारी मोहन—ओखू ! पहरा देने के लिए तुम आ गये ?

चौकीदार—हाँ, हुजूर ! ग्यारह बज गये।

मुरारी मोहन—देखो, इन्हें इनके घर पहुँचा दो। ये अपना घर बतला देंगी। बाहर बरामदे में इनकी नौकरानी होगी। उसे भी लेते जाना। आज दावत में कुछ देर हो गयी।

चौकीदार—बहुत अच्छा हुजूर ! [सलाम करता है।]

विश्वमोहिनी—मैं खुद चली जाऊँगी।

मुरारी मोहन—ओ, मुझे खुद साथ चलना चाहिए।

विश्वमोहिनी—[लज्जित होकर] मेरा मकान थोड़ी ही दूर पर है। आपको ज्यादा तकलीफ न होगी।

मुरारी मोहन—कुछ तकलीफों में आराम ही मिलता है। ओखू ! तुम जाओ।

चौकीदार—हुजूर ! एक बात है।

मुरारी मोहन—क्या ?

चौकीदार—हुजूर ! पहरा देते-देते थक जाता हूँ। कुछ अफीम हो तो मिल जाय।

मुरारी मोहन—कितनी चाहिए ?

चौकीदार—हुजूर जितनी दे दें।

मुरारी मोहन—एक तोला भर है।

चौकीदार—[खुश होकर] क्या कहना हुजूर ? एक हफ्ते तक चंगा हो जाऊँगा।

मुरारी मोहन—[मेज की दराज खोल अफीम निकालकर देते हुए] अच्छा लो, होशियारी से पहरा देना।

चौकीदार—[सलाम करता है।] अब हुजूर मैं अकेला सारे शहर का पहरा दे सकता हूँ। [बाहर जाता है]

विश्वमोहिनी—इसका नाम नहीं लिया ?

मुरारी मोहन—दूकान का पहरेदार है। जाना-पहचाना हुआ आदमी, फिर नाम तो बड़े आदमियों के लिये जाते हैं !

विश्वमोहिनी—क्योंकि वे ही ज्यादातर आत्महत्या करने की बात सोचते हैं।

मुरारी मोहन—[लज्जित होकर] जाने दीजिए इन बातों को। [गहरी साँस लेकर] चलो, पीछा छूटा अफीम से। छोटी-सी चीज, पर कितना बड़ा असर? सिर्फ, एक तोला अफीम!

विश्वमोहिनी—[मुस्कराकर] और उसकी भी कीमत नहीं मिली!

मुरारी मोहन—मिली न! बहुत मिली, आप मिल गयीं!

[विश्वमोहिनी प्रसन्नता में लज्जा मिला देती है। दोनों जाने को प्रस्तुत हैं।]

[पर्दा गिरता है]

पर्दे के पीछे

उदयशंकर भट्ट

[सेठ छोतरमल की दूकान। दूकान क्या है मकान है। दालान है जिसमें तीन खुले दरवाजे हैं। पश्चिम की तरफ लक तख्तों का पर्दा लगाकर मुनीमों के बैठने का स्थान बना है, जहाँ छोटे डेस्कों के साथ दो मुनीम बैठे म कर रहे हैं। बीच के म बैठने के लिए गद्दे बिछे हैं। बीच में दक्षिण की तरफ एक बड़े ग एक ओर गद्दी और तकिये बिछे हैं। एक छोटा सा लोहे का सन्दूक टेलीफोन बाईं तरफ रखा है। उसके साथ ही मकान में भीतर ज... ... दरवाजा है, जिस पर पर्दा गिरा हुआ है। दालान के बाईं तरफ पश्चिम की ओर से जहाँ दो मुनीम बैठे हैं कई प्रकार की संख्या बोलने की आवाज आ रही है—जैसे पाँच सौ तीन रु एक आना दो पाई, छह सौ छब्बीस रु. नौ आना आठ पाई, रोकड़ में जमा। सत्ताईस सौ रुपया बम्बई की गोठों का आदि-आदि। सब संख्याएँ तीन-चार संख्या वाली हैं। कभी-कभी एक मुनीम दूसरे को डाँटता भी सुनाई देता है, या कभी-कभी एक-दूसरे पर व्यंग्य भी करता है। दाईं तरफ भी इसी तरह एक पर्दा डालकर कुछ कुर्सियाँ; बीच में एक मेज और एक सोफा-सेट बिछा दिया गया है। नीचे एक कार्पेट बिछा है। दाईं ओर का भाग भी दर्शकों के सामने ही है। इस समय पर्दा नहीं है। यहाँ फर्म के मालिक सेठ छोतरमल की गद्दी है। छोतरमल की अवस्था ४२ वर्ष और शरीर दुहरा है। बन्द गले का लट्ठे का कोट, काश्मीरी बेल-बूटे की टोपी, पतली धोती, पैर में काला पम्प शू पहना है। रंग गेहुँआ, नाक मोटी, चेचक के दागों से भरी, आँखें चश्मे के भीतर मर्मभेदी। शरीर पुष्ट। मुंह में कुछ-न-कुछ चबाते रहने की आदत। बात करते समय दाँत बाहर निकल आते हैं

और तमाम चेहरा मुड़े हुए अखबार की तरह सिमट जाता है ; जैसे सिसियाकर बात कर रहा हो। बात करते समय बातों के आधार पर मुख के कोण बनते हैं। अँगुलियों में कई प्रकार की अँगूठियाँ, और यदि कभी पैर नाप्नी दिखायी दें तो पैर के दोनों अँगूठों में एक-एक चाँदी का छल्ला भी दिखायी देगा। इस समय बाईं ओर एक डाक्टर कुर्सी पर बैठा है। डाक्टर सर्ज का काला सूट पहने है। आँखों पर चश्मा, शरीर भारी, रंग साँवला। कभी-कभी स्टेथिस्कोप हिलाता है, कभी उसे जेब में रख लेता है। वह सेठ के पशु-अस्पताल का नौकर है। उसकी अवस्था है लगभग पैंतीस वर्ष। इस समय डाक्टर अकेला है। सेठ ने उसे बुलाया है। नौकर दीनू जैसे ही स्टूल पर गंगासागर लाकर रखता है वैसे ही डाक्टर बोल उठता है।]

डाक्टर—दीनू, सेठजी कब आएँगे भाई ?

दीनू—[स्टूल पर गंगासागर रखने के बाद जेब से बीड़ी निकाल कर सुलगाता हुआ] बैठो डाक्टर साब, बैठो, सेठ आने ही वाले हैं। गजब है, एक आने की आठ बीड़ी ! कभी एक आने का बंडल मिला करे था, वडल ! सब चीजों में आग लगी है। पैसे की कोई चीज नी रही जी डाक्टर साब, [पास जाकर] मेरी भानजी खाँसी के मारे मरी जा रही है। कोई दवाई दे दो न ! तुम तो कबूतरों का इलाज करो हो डाक्टर साब !

डाक्टर--[पैर तथा स्टेथिस्कोप हिलाता हुआ] खाँसी कब से है ?

दीनू—[बीड़ी का कश खींचकर] ये ही कोई दो महीने से डाक्टर साब, जहाँ खाया वहीं उलट धरे है। रातों खाँसे है, मेरी दारी सोने भी तो नी दे है और थारे कबूतरों, बन्दरों, जानवरों का के हाल है ?

[मुनीम बाईं तरफ से बाहर निकल आता है]

रामधन—डाक्टर साब, कोई पेट का भी इलाज करो हो ? भूख ही मारी गयी। कुछ अच्छा ही नहीं लगे। दीनू, ओ रे सुन, जाके भीम की दुकान से दो तेल की खस्ता कचौरी तो ले आ। ले दो आने। [पैसे फेंकता है।] और चटनी जरूर लइयो। कहो गरमा-गरम दे। जा, अभी काम करना है। सारी रोकड़ मिलाने को पड़ी है। हाँ, तो फिर क्या कहो हो ? तुम भी लोगे क्या एक-दो कचौरी डाक्टर साब ! कचौरी

बड़ी नाशाब बनाते है, भौमा। हाँ, तो पेट'''[दीनू जाता है।]

डाक्टर—आश्चर्य यह है, तुम बीमार क्यों नहीं हो गये पूरी तरह, और मर नहीं गये?

रामधन—क्या कहो हो डाक्टर साब ! मैं क्यों मरता भला? ये भी अच्छी रही, पेट की बीमारी का हाल कहो तो लगे मारने। तनख्वाह तो तुम्हारे यहीं से जाय है न?

- डाक्टर—[उठकर] मुनीमजी, मेरा मतलब, सुनो तो सही।

रामधन—देख लिया तुम्हारा मतलब ! तुम्हारे जैसे सैंकड़ो हैं सैर मे। क्या कमी है? हमने कहा घर के अपणे ही हैं पूछ लो। पर यहाँ तो [दीनू आता है]—ले आया दीनू? ला भीतर ले आ। पानी भी एक गिलास लइयो।

[घुटने जोड़कर खाने लगता है।]

डाक्टर—मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तो कह रहा हूँ तेल की कचौरी रोग पैदा करती है। इससे लिवर खराब होता है। वह इण्टे-स्टाइन में जाकर जम जाती है और तुम्हारे-जैसे'''[आगे बढ़ता है]

रामधन—रहने दो, आगे कहाँ जूते पहने बढ़े चले आओ हो? भिष्ट कर दोगे क्या? रहो। हाँ [वहीं से एक मुनीम को आवाज देता हुआ, मुँह में कचौरी भरकर] धामीलाल, सेठ मन्नालाल रामरत्न का भी हिसाब तैयार कर लीजो, रोजाना के खाते से। मैं बस अभी आया। आधी कचौरी रह गई है। ला दीनू, पानी दे। [किनारे पर बैठकर] ला ओक में ही प्यादे मेरे यार ! [पानी पीता है। डकार लेकर] शिव शंकर, क्या बढ़िया कचौरी बनावे है मेरा यार, बस जी करे है खाते जावें। [धोती से हाथ-मुँह पोंछकर, फिर एक डकार और लेता है।] हाँ धामीलाल, क्या कहा तैंने? [जाकर बैठ जाता है। फिर उसी भाग से हिसाब-किताब की कई आवाजें आती रहती हैं।]

दीनू—डाक्टर साब, थारी कसम, लो बोलो, पाणी पिओगे क्या? ताजी अभी भरकर लाया हूँ। सिगरेट लाऊँ थारे लिए? बस, ऐसी दवा दो कि छोरी खाते ही ठीक हो जाय। तुम्हारी कसम, रातों भी सोने देती। मैं तो कहूँ मर जाय तो ही अच्छा।

डाक्टर—*ठीक हो जावेगी। सुना, क्या हाल है हमारे सेठ का?*

दीनू—*गफ्फे हैं गफ्फे!* [दोनों हाथ मिलाकर अंगुलियाँ मोल करके धीरे से] *क्या पूछो हो, न हजार का ठीक, न लाख का। एक हम हैं सवेरे से शाम तक जी-हुजूरी करते रहें। तीन साल तो अभी-अभी हाथ आया है। वैसे है सेठ भला। नौकरों को एक-एक कुर्ता एक-एक धोती दी।* [मुनीम की तरफ इशारा करके धीरे से] *इन्हें भी बहुत कुछ दिया। मेरी लड़की का ब्याह था, सौ दे दिये।* [उपेक्षा से] *ऐसे ही गुजर-बसर हो री है डाक्टर साब, सुने है तुम्हारे अस्पताल में भी एक कमरा और बनेगा। हमारा सेठ बैसे परोपकारी है। वैसे तुम जानो बेईमानी कौन नी करे है, पर दान करता रहे तो सारा पाप धुल जाय है। मन्दिर बनवा दो धर्मशाला बनवा दो, बामनों को खिला दो बस!* [डाक्टर अपने ध्यान में मग्न है, दीनू उसके सामने कहता जा रहा है, कभी-कभी बरी-बाइं की सिकुड़न भी ठीक कर देता है। कपड़ा लेकर सन्दूक भी साफ कर देता है।] *इतनी बीत गई और भी बीत जायगी डाक्टर साब। घीसालाल जी, पाणी पिओगे क्या? ताजा है, अभी भरा है। कचौरी-अचौरी मँगाओ तो खाने भी ल्या दूँ।* [कहीं से आवाज आती है, 'दीनू जरा-सा पाणी तो दावात में दे जा'] *ल्याया जी, अभी ल्याया।* [पानी लेकर देता है] *क्या गूँगे हो डाक्टर साब!* [पास जाकर धीरे-से] *सेठ से कहो तुम्हें भी कुछ दे दे, तनखाह बढ़ा दे। आजकल गफ्फे हैं गफ्फे। सेठानी तीर्थों को जा री है।*

डाक्टर—[अपने आप बेचैनी से] न जाने कब तक बैठना पड़ेगा?

दीनू—*बस अब आते ही होंगे। बाहर गये हैं, बस, इच आई मोटर। बड़े साब के पास बुलाया था। कहे हैं चोर-बाजारी की थी, उसी के मामले में।* [पास जाकर धीरे से] *देख ती रहे बहियाँ बदली जा री हैं। दिन-रात-काम होवे है। बड़े मुनीमजी भी साथ हैं।* [मोटर का हार्न] *लो आ गए। बड़ी उमर है सेठजी की।*

[सेठ उसी रूप में बड़े मुनीम के साथ आता है और फिर चुपचाप भाग में खड़ा होकर मुनीम को समझाता है, एकदम डाक्टर पड़ जाती है।]

सेठ—अच्छा, डाक्टर साहब, आ गये क्या ? न हो थोड़ी देर घूम आओ। दीनू, देखे क्या है, मैं जा डाक्टर साहब को बाहर ! [डाक्टर, जो सेठ के आने के समय से ही खड़ा है, दीनू के साथ बाहर निकल जाता है] अच्छा, बहियाँ तो बदल गयीं, आगे क्या करना है ?

बड़ा मुनीम—कुछ नहीं, अब वे क्या कर सकते हैं ? भगवान् ने चाहा तो उनके पितरों को भी पता नहीं लगेगा सेठजी !

सेठ—हाँ, [चारों तरफ देखकर] ठीक है। चालाक रहो। फिर कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। साहब से मैंने तो कह दिया—बेईमानी करने वाले की ऐसी की तैसी। तुम जानो, भला हम क्यों बेईमानी करते ?

बड़ा मुनीम—यह तो व्यापार है। दो पैसे सभी कमाना चाहते हैं। मैंने भी कहा वैसे सभी कुछ तो सरकार का है। हम क्या नहीं चाहते जो कुछ हो ठीक हो।

सेठ—[घूमता हुआ] हाँ हाँ, ठीक है। बात ऐसी है कि... तुम जानो कि आदमी गिरफ्त ... में। तुमने ठीक कहा। मैं सबको देख लूँगा। [सामने खड़ा होकर ... कुत्ते की ओर इशारा करके] चोरी का जमाना। वैसे इसे ऋषि-मुनि भी छोड़ नहीं सके... तुम जानो। फिर इनकी तो बात ही क्या है ! [आँखें मटकाकर] पर इसका ध्यान रखना ही पड़ेगा। न हो, दो सौ-चार सौ फेंक दो उसकी तरफ भी, कुत्ते को रोटी का टुकड़ा डाल दो तो काटना क्या भौंकना भी छोड़ दे। बाबाजी कहा करते थे, रुपया कमाओ तो एक आना भूखों में दो—कैसा भला, एक पैसा नौकरों में बाँटो, एक पैसा फेंककर अफसर का मुँह बन्द करो, दो पैसे दान करो—तो समझ आने पर्वे-त्यौहार करे है।

मुनीम—मुझे क्या बताओ हो सेठजी, इसी घर में तो पला हूँ। वैसा तो आदमी होना मुश्किल है। इतने गरीबनिवाज, एक बार चाचा बीमार हो गये तो सुबह-साँझ दोनों वक्त जाते थे देखने। उन दिनों हकीम, वैद होते थे, सो उन्होंने उनसे कह दिया—रुपये की फिकर न करना, घर भर दूँगा वैदजी, बस, मेरे मुनीम को अच्छा कर दो।

सेठ—मुझे याद है। तुम्हारे ब्याह में ही सब कुछ अपने हाथ में लिया।

मुनीम—घीसालाल, पक्षियों का क्या हाल है ?

घीसालाल—तैयार है बस, सब मामला। रामधन जी कह रहे हैं…

सेठ—उस डाक्टर को तो बुला घीसालाल, वह भी बड़ा कामचोर है। [घीसा जाता है] काम-धन्धा करेगा नहीं, और चाहेगा कि तनखा बढ़ जाय। [तेजी से] बढ़ा दूंगा तेरी तनखा। चोर न हो कहीं का। [मुनीम से] कोई और नहीं है ? यह तो घरेलू इलाज के भी काम का नहीं है। बाई को पिछले दिनों बुखार आया, वह भी तो नहीं उतार सका। पर जब देखो, इसका भी एक आदमी है इनकमटैक्स आफिस में।

मुनीम—मुझे तो इसमें कोई चतुराई नहीं दीखती। मेरी बाई की तो इससे खांसी भी ठीक नहीं हुई, बुखार तो क्या जाता ? पर अब तो काम निकालना है सेठजी !

सेठ—नालायक है नालायक ! लो आ गया, तुम जाओ। [डाक्टर आता है।] आइए डाक्टर साहब, आइए। कहिए मिजाज तो ठीक हैं न ?

मुनीम—हमारे उस मामले का क्या हुआ डाक्टर साहब ? बात यह है, वह काम तो होना ही चाहिए।

सेठ—मैं बात करूंगा मुनीमजी, तुम जाओ।

[मुनीम जाता है]

हां, बैठिए न इधर बैठिए सोफे पर। अरे दीनू, देख सामने की दूकान से डाक्टर साहब के लिए चाय-वाय ला। अच्छा रहने दे, फिर सही। हां, तो कहिए अस्पताल का क्या हाल-चाल है ?

डाक्टर—इस अस्पताल के कारण सारे देश में आपका नाम हो रहा है। मनुष्य के लिए तो सभी अस्पताल खोलते हैं, जानवरों के लिए भी सरकार ने अस्पताल खोले हैं, परन्तु आपने पक्षियों और जानवरों दोनों के लिए अस्पताल खोला है, उससे सारी जगह नाम है।

सेठ—खैर, वह तो है ही, तो क्या कुछ समाचारपत्रों में निकला है ?

डाक्टर—जी, यह लीजिए 'आदर्श' ने लिखा है कि सेठ छीतरमल जैसा दानी, परोपकारी व्यक्ति होना दुर्लभ है। यह पशु-पक्षियों के चिकित्सालय के सम्बन्ध में एक लेख 'लोक-पंच' में निकला है। इसमें मेरी भी काफी प्रशंसा की गयी है।

सेठ—'आदर्श' के सम्पादक को तो मैं जानता हूँ, उसे मेरी फर्म का विज्ञापन मिलता है। 'लोक-पंच' का सम्पादक कौन है ?

डाक्टर—वह मेरे एक मित्र हैं।

सेठ—क्या हमारे सम्बन्ध में 'नवीन भारत', 'विश्व सन्देश' जैसे पत्रों में कुछ नहीं निकल सकता ? मेरा मतलब, [बात का प्रसंग बदलते हुए] अस्पताल के सम्बन्ध में बराबर कुछ-न-कुछ निकलते रहना चाहिए। तुम्हें मालूम है मैंने तीस हजार रुपया खर्च करके अस्पताल का मकान बनवाया है। पन्द्रह हजार की दवाइयाँ और आठ सौ-नौ सौ का खर्च ऊपर से।·· ·· लो काकाजी आ गये। सब मिलकर इतना तो अब तक हो ही गया।

[सेठ के पिता का भाई शुद्ध मारवाड़ी वेश में तिलक लगाये, माला हाथ में लिये, लगभग साठ वर्ष की उम्र का, प्रवेश करता है। केवल मुँह में ही राम-राम कहता हुआ और गोमुखी में माला फेरता हुआ चुपचाप आकर बीच की गद्दी के एक किनारे बैठ जाता है। रह-रहकर गोमुखी हिलाता है, नाम है चाँदीराम।]

चाँदीराम—अस्पताल का क्या हाल है डाक्टर साहब ? राम, राम ! राम, राम !

डाक्टर—जी, ठीक ही चल रहा है। इस समय दो बैल, सात घोड़े, दो गधे, पन्द्रह कबूतर, चार बटेर, दो तीतर और सौ चिड़ियाएँ हैं। उनमें दस कबूतरों, एक बटेर, दोनों तीतरों और चालीस चिड़ियों का इलाज हो रहा है। एक बन्दर भी आज दाखिल हुआ है। सवेरे ही उसका ड्रेसिंग हुआ है। पशु ठीक हो रहे हैं।

चाँदीराम—सवेरे जब मैं मन्दिर से लौटकर गया तो वहाँ कोई भी नहीं था। [राम राम जपना]

सेठ—देखो डाक्टर, मैंने सुना है तुमने अपनी प्रैक्टिस भी शुरू कर दी है। यह ठीक नहीं है। डेढ़ सौ रुपया नगद तनख्वाह का मिले है फिर उसी में गुजारा करो, तुम जानो, रुपया मुफ्त में थोड़े ही आवे है !

चाँदीराम—इसका मतलब तो यह है कि बीमारों का इलाज ठीक नहीं होता। [राम राम जपना]

जाएँगे, और दो को बना देंगे। एक तुम भी बन जाना। एक कम्पाउण्डर होगा। थोड़ा लाभ है ? और फिर उससे हमारा कुछ काम बढ़ा तो उसे भी कुछ दे देंगे।

डाक्टर—मैं नहीं समझा।

सेठ—इस बार हमारी सलाह है, चीफ कमिश्नर को बुलाकर अस्पताल दिखाया जाए।

चौदीराम—क्या बुरा है, क्या बुरा है ? सब शहर के बड़े आदमी भी उसी वक्त आ जाएँ।

बड़ा मुनीम—[आता हुआ] डाक्टर साहब, बुरा न मानो तो बात कहूँ। इस घर [सेठ के] में किसी बात की कमी नहीं रहती। तुम तनखा के लिए लड़ते हो। यहाँ का नौकर राजा की तरह रहते है। चाहिए लगन से काम करने की आदत। कुछ करके दिखाओ फिर सेठजी से कहने की जरूरत नहीं होगी। समझे ! बाबाजी जैसा दयालु तो होना मुश्किल है। देख नहीं रहे ? बिना ब्राह्मणों को भोजन कराए भोजन नहीं करते। यह दूसरी बात है कि वे घर के ही रसोइए हैं।

सेठ—मैं तो आज तुम्हारे पाँच सौ कर दूँ। पाँच सौ का काम करो।

डाक्टर—मैं जी लगाकर काम करता हूँ। सिर्फ अस्पताल के बाद प्राइवेट प्रैक्टिस करता हूँ, और जो काम कहिए करूँ।

सेठ—इन्हें समझाओ मुनीमजी, मैं अभी आया। [भीतर की तरफ से मकान में चला जाता है; वृद्ध आँख मींचकर भजन करने लगता है, मुनीम और डाक्टर बैठ जाते हैं।]

बड़ा मुनीम—बात यह है 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाला काम है यहाँ तो। तुम्हारी जान-पहचान के बल्कि तुम्हारे ही एक रिश्तेदार [illegible] के अफसर हैं। उनसे कहो, हमारे काम में कुछ रियायत करें तो सेठजी तुम्हें भी देंगे और उन्हें भी कुछ दे देंगे।

चौदीराम—हम कुछ कुसूर तो काम नहीं कराते। मामला [illegible] रहा है। चाहे यहीं नहीं

बड़ा मुनीम—बात को समझा करो। ये बातें खुलकर नहीं की जातीं डाक्टर साहब !

डाक्टर—[सोचता हुआ] हाँ है तो सही, मेरे जाने से जाना का काम है। मैं आज ही जाऊँगा। देखूँगा।

चाँदीराम—हाँ, जाओ, अभी जाओ। नहीं तो गाड़ी से जाओ। तुम कोई पराये तो नहीं अपने ही तो हो। दीनू, ड्राइवर से कह दे गाड़ी तैयार कर लाये। तुम भी जाओ मुनीमजी ! राम राम राम। काम बनाओ पहले। दम बढ़ जाएँगे, पक्के रहें।

बड़ा मुनीम—चलो फिर, न जाओ आज अस्पताल, कम्पाउण्डर तो है ही। आओ चलें।

चाँदीराम—हाँ, जाओ बेटा, जाओ। अस्पताल की क्या बात है? काम होना चाहिए। [बुड्ढा उठकर भीतर चला जाता है। डाक्टर और मुनीम भी बाहर चले जाते हैं।]

[मुनीम आपस में बातें करते हैं]

रामधन—हाँ, बोल न और आगे ?

घीसालाल—बस, अब नहीं। थक गया मैं तो।

रामधन—मालूम है, मुनीमजी क्या कह गये हैं, सारी रोकड़ आज ही उतारनी है।

घीसालाल—मुनीमजी का तो एक आना हिस्सा है। हम क्यों मरें? पैंतीस रुपये मिलते हैं वे भी सूखे। अब मैं नहीं कर सकता। [बही पटक देता है।]

रामधन—काकाजी आते होंगे। देखेंगे कि चला गया घीसालाल तो शामत आ जाएगी तेरी।

घीसालाल—[कड़ककर] शामत क्यों? क्या काम नहीं करा जो शामत आ जाएगी? सुनो मुनीमजी ! इतना ब्लैक से कमाया सेठ ने। हमको क्या मिला? एक कुर्ता, एक धोती और दस रुपये। बस !

रामधन—और क्या लूटेगा? कोवट का माल है। दिन-रात एक करके अफसरों की आँख में धूल झोंककर कमाते हैं तो क्या लुटाने के लिए?

घीसालाल—तो तुम्हारा पेट भरे तो तुम करो। मुझसे तो जितना होगा, करूँगा। इतनी मुसीबत है। गुजारा तो होवे नहीं है। मन्दा है, नहीं तो फाटके में से ही कुछ मिल जाता !

रामधन—फाटका मत खेला कर घीसालाल, पीशा बरबाद होवे है। मैं तो पिछले महीने चार सौ भर चुका हूँ [सोचकर], और तू कहे तो ठीक ही है। ६० रुपल्ली में होवे क्या है? पर अब कहाँ जायें? सत्तर तो कोई देने से रहा। हाँ, इसमें होली-दिवाली पर कुछ मिल जाय है बस, यही। मालूम है कितना फायदा होगा सेठ को अगर बच गए तो……

घीसालाल—कितना होगा भला?

रामधन—[धीरे से] दस लाख से ऊपर तो सिर्फ कपड़े और लोहे में।

घीसालाल—[आश्चर्य से] इतना? तभी, तभी मुनीमजी! मेरा मन करे है सब बतला दूँ जाकर पुलिस को।

रामधन—पागल हो गया है घीसालाल, ऐसा नहीं करते। जिस हाँडी में खाना उसी में छेद करना, धर्म नहीं है अपना।

घीसालाल—[क्षोभ से] तो बेईमानी करना धर्म है? सरकार को धोखा देना, लोगों को लूटना धर्म है? कहाँ है धर्म? क्या ऐसा धर्म मानने योग्य है? मैं ऐसा धर्म नहीं मानता। जी तो ऐसा करे है अपना गला घोंट लूं। चार महीने से घरवाली बीमार है, उसकी दवा-दारू को पैसा नहीं है। माँ पिछले दिनों जीने से गिर पड़ी, उसका पांव ठीक नहीं होवे। न वक्त पे रोटी न कुछ, कहाँ से लाऊँ इतना पैसा? धर्मार्थ औषधालय से दवा लाता हूँ पर फायदा हो तो! पिछले दिनों बहू की कण्ठी बेची। [आँखों में आँसू भर आते हैं] मर जाय तो पाप कटे।

रामधन—तो दूसरी कर लेगा, क्यों? [हँसता है, फिर गम्भीर हो कर] तू ठीक कहे है घीसालाल, यहाँ भी यही हाल है। तीन बच्चे हैं, बीवी और आप, साठ रुपये तनखा, पर क्या करूँ? एक तरफ खाई दूसरी तरफ कुआँ। बैठे हैं, शायद कभी अच्छे दिन आयेंगे, किस्मत होगी तो और पेट…भूख ही मारी गई है।

घीसालाल—किस्मत कभी नहीं होगी मुनीमजी, गधे की किस्मत में कभी नहीं लिखा कि वह आराम से खाएगा। गरीब की किस्मत नहीं होती, किस्मत होती है मालदार की।

रामधन—तो फिर तू ही मालदार बनके दिखा! ये तो ईश्वर के खेल हैं—कोई सुखी तो कोई दुखी; कभी रात, कभी दिन।

घीसालाल—मैं ये बातें नहीं मानता। ईश्वर को क्या पड़ी है कि किसी को मालदार और किसी को गरीब बनावे। यह तो हमारी समाज-व्यवस्था की कमजोरी है।

रामधन—अरे, तू तो बड़ा पंडत हो गया है घीसालाल, समाज-अमाज की वार्ता सीख रहा से रे! सुन मेरे भाई, ये माना कि देश में खूब अनाज होवे तो फिर किसी बात की कमी नहीं रहेगी। अनाज के तोड़े से ही सब चीजें महँगी हैं।

दीनू—घीसालाल जी, तुम कचौरी-अचौरी मँगाओगा क्या? ताजी बन रही हैं, आज तो मैं भी एक खा ही आया। मजेदार है मुनीम घीसालाल।

घीसालाल—मैं क्या मुंह ले के कचौरी खाऊँगा दीनू, ये तो मुनीम जी का काम है। सूखी दो रोटी मिल जायँ आजकल तो वही बहुत है भाई। अच्छा मैं चला, दवा लानी है। [जाता है]

रामधन—जा हम भुगत लेंगे और क्या, बेचारा दुखी है, इसीलिए चिड़चिड़ा रहा है।

[एक-दो खद्दरधारी जनों का प्रवेश]

एक व्यक्ति—[पास आकर] सेठजी कहाँ हैं?

रामधन—दीनू, ओ दीनू, देख सेठजी को आपके आने की खबर कर दे। आप बैठो। भीतर गये हैं।

दीनू—बैठो साब, बैठो, मैं अभी बुलाता हूँ।

[दोनों बैठ जाते हैं]

लालचन्द—कम-से-कम पाँच सौ लेना है सेठ से।

नेमिचन्द—हाँ, और क्या! तभी तो पूरा होगा। आखिर सर्वोदय समाज के उत्सव का खर्च सभी तो दिखलेगा। इतने नेता आ रहे हैं। सम्भव है जवाहरलालजी आ जाएँ। फिर तो···

लालचन्द—उम्मीद तो है हमने जिनको बुलाया है वे सभी आ जाएँगे। अच्छा भला तुमने रतनलाल को दिल्ली जाने का कितना खर्च दिया है?

नेमिचन्द—दो सौ लेकर गये हैं।

लालचन्द—क्यों, इतना क्यों ? दो आदमी और दो सौ ! दो सौ तो बहुत हैं। अगर वे इण्टर में भी आएँ तो भी आने-जाने के पचास बहुत हैं।

नेमिचन्द—वे गये हैं सेकण्ड में और ठहरेंगे होटल में। फिर वहाँ ताँगे में तो चलने से रहे, टैक्सी के बिना काम नहीं चलेगा। दूर जो बहुत है !

लालचन्द—हूँ, [सोचता है] फिर नेताओं के ठहराने और खाने-पीने का प्रबन्ध मेरा रहा।

नेमिचन्द—मेरा और तुम्हारा दोनों का नाम है।

लालचन्द—सो हम कर लेंगे, तुम निश्चिन्त रहो।

घीनू—सेठजी आ रहे हैं। [सेठ का प्रवेश]

सेठ—[देखते ही हाथ जोड़कर] धन्य भाग ! [हँसता है, हाथ मिलाकर] यह सूर्य किधर से उदय हुआ ? धन्य भाग, धन्य भाग ! आइए बैठिए।

नेमिचन्द—हाँ, साहब, लालचन्दजी सूर्य के समान हैं तो मैं पुच्छल तारा हूँ। [हँसता है]

सेठ—मैं आप दोनों को सूर्य मानता हूँ। बात यह है कि अधिक प्रकाश में सूर्य एक है या दो—यह जानना मेरे लिए कठिन है। मेरे लेखे तो आप दोनों ही मेरे भगवान् हैं। कुछ जल-पान मँगाऊँ ? अरे दीनू, देख बढ़िया-सी मिठाई तो ला, कुछ नमकीन भी और आध सेर बड़े अंगूर और दो सोडे की बोतलें। जा ! और सुनाइए, क्या समाचार हैं ? बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए। गांधी-जयन्ती के इस बार क्या प्रोग्राम हैं ? क्या बताऊँ, आजकल मैं गांधीजी की आत्मकथा पढ़ रहा हूँ, बड़ा मजा आवे है। खूब थे गांधी बाबा !

लालचन्द—उसी के सम्बन्ध में आपको कष्ट देने आये हैं। गांधीजी तो इस युग के अवतार हैं, अवतार !

नेमिचन्द—हम लोगों के तमाम काम आपके ही सहारे हैं। इस बार गांधी-जयन्ती के सप्ताह में सर्वोदय समाज की मीटिंग, प्रार्थना, प्रवचन, चरखा-दंगल, खादी सप्ताह तथा बच्चों के भी कुछ प्रोग्राम करने की

सप्ताह है । वे तो कह रहे हैं कि एक कवि-सम्मेलन भी किया जाए, जिसमें राष्ट्रीय भावना की कविताओं का पाठ हो । [हिचकिचाकर] उसी के लिए··· पहले आप यह बताइए कि आप खादी सब घर के लिए खरीद रहे हैं या नहीं ? हम खादी का प्रचार कर रहे हैं ।

सेठ—बहुत अच्छा प्रोग्राम है । खादी के लिए रही बात, सो मैं तो आप जानते हैं प्रायः [illegible] ही पहनता हूँ । फिर आप कहेंगे तो उन दिनों के लिए खादी के कपड़े बनवा लूँगा । वैसे खादी मुझे बहुत पसन्द है, उन दिनों जब महात्माजी का दौरा हुआ था मैं तभी से खद्दर पहनने लगा था । यह तो सरकार के लोगों से मिलने के कारण बदलना पड़ा । अब तो खादी का निश्चय ही समझिए ।

लालचन्द—तो मतलब की बात यह है कि इस सब काम के लिए आपको कष्ट देना है ।

[होनू मिठाई लाता है]

सेठ—लीजिए, पहले जलपान कर लीजिए । पानी ला रे, हाथ धुला ।

दोनों—आप भी तो लीजिए सेठजी !

सेठ—नहीं, मुझे तो क्षमा करें । अभी भीतर से जलपान करके ही चला आ रहा हूँ । हाँ, आज्ञा कीजिए । [दोनों खाते हैं]

लालचन्द—हाँ, तो हमने ५०० रुपये आपके नाम डाले हैं ।

नेमिचन्द—अरे तो ५०० रुपये से भी क्या कम होंगे ? सेठजी से मैं तो हजार······। यही तो हमारे नगर के दानी हैं ।

सेठ—पाँच सौ तो बहुत हैं । हाँ ही हाँ···सौ लिख लिजिए, सौ ।

लालचन्द—[मुँह में मिठाई भरे हुए] नहीं सेठजी, ५०० रुपये से कम नहीं ।

नेमिचन्द—ये अवसर बार-बार नहीं आते हैं । हमारा विश्वास है, जवाहरलालजी भी आएँगे ।

सेठ—आप मालिक हैं, दस हजार लिख देंगे तो भी देना पड़ेगा । आप ही तो सरकार हैं । सब आपका ही तो है । इधर इनकमटैक्स वाले तंग करते हैं, बाजार वैसे मन्दा है, रोजगार तो रह ही नहीं गया, खर्च बेहद ! सच मानिए लालचन्दजी, पेट भरना मुश्किल है । बस, किसी

तरह इज्जत बची रह जाय यही बहुत है, नहीं तो पहले आपने देखा होगा······

लालचन्द—न पाकिस्तान बनता, न हमारे देश की यह दुर्दशा होती। इधर तो पाकिस्तान से इतने आदमियों का आना, उधर अनाज की कमी। क्या किया जाए ?

नेमिचन्द—अरे साहब, हमी से पूछिए क्या हालत है। इतना त्याग किया, जेल गये, मार खाये, दुख सहे, जब कुछ बनने का अवसर आया तो और लोग आगे आ गये। वे मेम्बर बने। जिनके घर में भूँजी भाँग नहीं थी आज वे मोटरों में दौड़ते हैं, जिनके झोपड़े नहीं थे आज वे कोठियों में रहते हैं।

लालचन्द—चलो जाने दो, अपने को क्या नेमिचन्दजी ? हमारा काम है सेवा करने का सो सेवा करते हैं। स्वराज्य तो हमी ने दिलाया है।

नेमिचन्द—इसमें क्या शक है ? पर नहीं, मैं तो स्पष्टवक्ता हूँ, लगा-लेसी नहीं रखता। साफ है, हमने किससे कम त्याग किया है ? मैंने हजारों आदमियों में खड़े होकर व्याख्यान दिये हैं। लोग मान गये कि हाँ है कोई बोलने वाला। पर···। और तुमसे क्या छिपा है ?

सेठ—सो तो है ही। आपका त्याग किससे कम है ! हम जानते हैं। पर एक बात देखिए [जरा पास आकर] जो वीविंग मिल के शेयर जो आपने खरीदे हैं यदि मिल सकें तो आधे शेयर मुझे भी खरीदवा दें। मैं ले लूँगा।

नेमिचन्द—क्यों नहीं, आज ही मैं कह दूंगा। यदि आप मेरे शेयर खरीदना चाहें तो वे भी सस्ते दामों पर···पर···।

सेठ—नहीं नहीं,···मैं चाहता हूँ हम लोग अपने ग्रुप के आदमी मैं ताकि मिल के ऊपर हमारा अधिकार हो। सुना है, लालचन्दजी कोठी बनवा रहे हैं ?

लालचन्द—हाँ, अभी तो शुरू ही की है।

नेमिचन्द—कोठी तो मैं भी एक बनवाना चाहता हूँ।

सेठ—क्या हर्ज है आपने क्या कम कष्ट उठाये हैं ?

लालचन्द—हाँ, फिर क्या निर्णय किया आपने ? देखिए हम पाँच सौ से [घिघियाकर] कम न लेंगे।

सेठ—*जैसी आपकी मर्जी ! मैं क्या आपसे बाहर हूँ ? पर एक बात है…*

नेमिचन्द—कहिए ! हाँ, लिखो पाँच सौ सेठ छीतरमलजी के नाम। चेक दीजिएगा या…?

सेठ—*जैसा कहें। रुपया भी हाजिर है।*

लालचन्द—रुपया ठीक रहेगा, क्यों नेमिचन्दजी ?

नेमिचन्द—हाँ, और क्या ? कौन झंझट मोल ले और भुनाने जाय ?

सेठ—मुनीमजी, रामधनजी, ५०० रु. भीतर से ला दो। कागजी से गुच्छा ले लेना। और आपने हाथ तो धोए ही नहीं। दीनू, हाथ धुला और पान ला। *सिगरेट पियेंगे।*

रामधन—जी, बहुत अच्छा ! [जाता है]

लालचन्द—हाथ तो धुले-से ही हैं। लाओ, फिर भी धो ही लें।

दीनू—[हाथ धुलाने के बाद] कौन-सी सिगरेट लाऊँ ?

लालचन्द—देख, पाँच सौ पचपन नम्बर की सिगरेट मिले तो एक पैकिट ले आना।

नेमिचन्द—मेरे लिए तो तू एक सिगार ले आ। बर्मा सिगार कहना। बारह आने की एक आयेगी। क्या बताऊँ, सिगार की आदत पड़ गयी है। बड़े-बड़े आदमियों में मिलना-बैठना होता है। क्या करूँ ? पीता हूँ—पीता क्या हूँ, पीना पड़ता है।

सेठ—हाँ, क्या हरज है, यह तो है ही। ला जल्दी [दीनू जाता है]

लालचन्द—और सुनाओ सेठजी !

सेठ—क्या सुनाएँ पंडितजी, आपके राज में पिटे जा रहे हैं। न कोई सुनता है न देखता है। किसी ने शिकायत कर दी कि हमने ब्लैक मार्केट किया है, सो परसों इनकमटैक्स कमिश्नर ने बुलवाया था। आज भी बुलाया था। मैंने तो कह दिया—साहब, आप माई-बाप हैं। हमारी जिन्दगी कांग्रेस की सेवा करते बीती है। फिर भला हम क्यों ब्लैक मार्केट करने लगे। बहियाँ माँगी हैं, परसों रात को पुलिस के आदमी आ गये। खैर, वह तो मैंने टाल दिये जैसे-तैसे। नाक में दम है साहब ! इसीलिए प्रार्थना है……

—क्या बताएँ इन कलक्टरों, कमिश्नरों के मारे नाक में दम

है। भला आप जैसे दानी को तंग करना क्या ठीक है? अच्छा, आप घबरायें नहीं, मैं उनसे मिलूँगा। विश्वास है मान जाएँगे, नहीं तो ऊपर जाना पड़ेगा।

लालचन्द—एक तरह से देखा जाए तो हममें और उनमें संघर्ष तो चल पड़ा है। जो हम कहते हैं उन्होंने उसे न मानने की कसम सी ली है। हम कहते हैं, अरे भाई, हम लोग घास तो नहीं खाते, आखिर गांधीजी के मार्ग पर देश को चलाना चाहते हैं। अब वैसी ब्यूरोक्रेसी नहीं चलेगी। समझे? पर बड़ी मुश्किल है। हमें तो कोई पूछता ही नहीं।

नेमिचन्द—तो इसमें किसी का अहसान नहीं है। जिन्होंने स्वराज्य दिलाया, स्वतन्त्रता कायम की, वे लोग साधारण नहीं हैं। आज भी कांग्रेस का राज्य है, उसी की हुकूमत है।

सेठ—सो तो है ही, सो तो है ही, तुम जानो, मानना पड़ेगा। हम लोग भी आपके ही सहारे हैं श्रीमान् जी! हाँ, तो मैं चाहता हूँ मैं जो स्टेटमेंट भेजूँ वह स्वीकार हो जाय। वैसे मैं अपनी तरफ से कोशिश कर रहा हूँ फिर भी……। मैं आपसे मिलना भी चाहता था इसी सम्बन्ध में।

लालचन्द—आपका काम हमारा काम है सेठजी, आप निश्चिन्त रहें, आपको आँच नहीं आ सकती।

सेठ—कृपा है आपकी। आप ही के सहारे हम लोग जी रहे हैं और क्या? मैं जाऊँ, देखूँ रुपया क्यों नहीं लाया मुनीम। जरा ठहरः……।

[चला जाता है।]

नेमिचन्द—हाँ हाँ, जाइए, [लालचन्द से] सेठ ने कमाया जरूर है करोड़ में।

लालचन्द—कम-से-कम सात-आठ लाख। पर अपने को क्या? आड़े वक्त काम देता है, सहायता मिलती है। पिछले दिनों लोन इसी से लिया, अब वोटों के लिए जरूरत पड़ेगी तो……

नेमिचन्द—गांधीजी देश के धनियों की रक्षा आवश्यक मानते थे।

लालचन्द—खैर, गांधीजी की धनिकों की रक्षा का मतलब दूसरा था। जो भी हो। कांग्रेस का संगठन दृढ़ करने के लिए साधारण लोग तो रुपया दे से रहे। रुपया हमको इन्हीं से लेना पड़ेगा, इसलिए इनकी रक्षा भी

करनी आवश्यक है। मेरी सलाह है, मैं भी एक मोटर खरीद लूं। अब उसके बिना काम नहीं चलता। आपने तो खरीद ली है।

नेमिचन्द – जरूर, यही क्या कम है कि सेठ में इतनी देश-भक्ति है और आवश्यकता पड़ने पर भरपूर सहायता करता है। हमेशा आड़े समय में सहायता के लिए तैयार रहता है।

[सेठ का आना]

सेठ—लीजिए, देर हो गयी, क्षमा करें। **[दोनों व्यक्ति नोट जेब में डालकर नमस्ते करते हुए चल देते हैं। सेठ उनको जाता हुआ देखता रहता है। चले जाने के बाद]** ये हैं कांग्रेस के लोग ! मेरे समान स्वार्थी और अर्थ-लोलुप ! इनके भी वैसे ही ठाट हैं, मकान, कोठी, मोटर, नौकर-चाकर, फिर मजा यह कि कुछ भी नहीं करते। व्यापार कोई नहीं करते। तो क्या रुपया आकाश से फूट पड़ता है ? अभी-अभी नेमिचन्द ने दस हजार के शेयर खरीदे हैं। और भी हिम्मत है ! मैं ब्लैक मार्केट करता हूँ, ये सहायता देते हैं। *ये स्वयं भी उतने ही डूबे हुए हैं जितना मैं। फिर मैं क्यों मानूं कि मैं ही पाप करता हूँ ? पाप, पाप कौन नहीं करता ?* कौन नहीं करता ? मैं पाप करता हूँ तो धर्म भी करता हूँ, दान भी देता हूँ, मन्दिर में पूजा भी करता हूँ, ब्राह्मणों को भोजन भी कराता हूँ, गरीबों को अन्न भी बँटवा देता हूँ। मैं पशु-पक्षियों की सेवा करता हूँ। उनके लिए मैंने अस्पताल खोल रखा है। उनकी बीमारी दूर होती है, क्या यह सब पाप धो डालने के उपाय नहीं हैं ? [टहलता रहता है] इनकमटैक्स वालों को ठीक करना होगा। वे अब पुराने हिसाब की बिन्दी भी नहीं पा सकते। यह नेमिचन्द और लालचन्द को दिया गया रुपया ही मुझे बचाएगा। मैं आज ही खद्दर खरीदकर कपड़े बनवा लूंगा। मैंने गलती की जो अब तक खद्दर के कपड़े नहीं पहने। पहनने होंगे, यही युग का, समय का, तकाजा है—जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजे। दीनू ! दीनू !

दीनू—हाजिर सेठजी !

सेठ—बड़े मुनीमजी और डाक्टर कहाँ गये दीनू ?

दीनू—बड़े मुनीमजी के साथ डाक्टर को काका साहब ने बाहर भेजा है सेठजी !

सेठ—बाबा साहब ने'' हाँ, ठीक है, जा ! [अपने आप] बाबा साहब ने भेजा है'''ठीक है। यदि निशाना सही पर बैठ गया'''सारा मामला इन क्लर्कों के हाथों में ही होता है। अफसर तो सरकार की प्रेस्टिज-प्रकाश का बल्ब है जो अपनी पावर के अनुसार चमकता है। कोई पाँच का, कोई दस का और कोई पच्चीस का। यदि उस बल्ब के ऊपर इकन्नी रखकर तार से जोड़ दिया जाए तो दूर तक अँधेरा फैल जाता है। बिजली फ्यूज हो जाती है। इसी तरह रुपये का जोड़ दूर तक प्रेस्टिज के प्रकाश को धुँधला कर देता है। चाहिए रुपये को वहाँ जोड़ने की योग्यता। [टहलता हुआ] लोग कहते हैं, हम लोग ब्लैक मार्केट करते हैं, हम सरकार के दुश्मन हैं, देश के दुश्मन हैं। गरीबों का खून चूसकर मोटे हुए हैं। कितनी गलत बात है ! क्या हमने गरीबी पैदा की है ? जिसमें योग्यता हो वह आगे आवे। हम में नहीं गरीब हो जाते, उनके दिवाले निकल जाते ? फिर वे अपनी योग्यता चतुराई से बड़े बन जाते हों भूठ है, सब झूठ है। रुपये को पकड़ने से रुपया मिलता है। उसके लिए कितने हाथ-पैर मारने पड़ते हैं, यह कौन जानता है ? कितने दिनों से मैं परेशान हूँ ? न रात को नींद आती है न दिन को चैन ! कितनी परेशानी है। रुपया कमाना ही कठिन नहीं है उसको लुटेरों, डाकुओं, चोरों और सरकारी पुर्जों से बचाकर रखना भी एक कठिन काम है। [टहलते हुए खड़ा होकर देखता है] कौन हैं, कौन हैं ये लोग ! एक लड़की, एक लड़का और यह आदमी भी उनके साथ है ? कौन हैं, आप क्या चाहते हैं ? अरे, पुलिस के दरोगा भी हैं। आइए, दरोगाजी साहब, बैठिए।

व्यक्ति—सेठजी, दया कीजिए। कुछ दिन और ठहर जाइए। हम आपका सब किराया चुका देंगे, मकान खाली कर देंगे।

सेठ—क्या तुम मेरे किरायेदार हो ?

व्यक्ति—जी, ये दरोगा हमारा असबाब मकान से बाहर निकालकर फेंक रहे हैं।

सेठ— तो ठीक ही कर रहे है। इधर एक साल से तुमने किराया भी तो नहीं दिया है !

सेठ—सुनिए श्रीमान्, मैं ऐसे अवसर को हाथ से नहीं जाने दे सकता। अब तो मेरा मकान खाली करना ही पडेगा। या फिर···या फिर···

व्यक्ति—या फिर क्या, कहिए? जो कुछ हो सकेगा, मैं प्रयत्न करूँगा। मैं बहुत दुखी हूँ सेठजी, आप दानी हैं, नगर मे आपका नाम है। आप तो पशु-पक्षियों पर भी दया करते हैं, फिर मैं तो मनुष्य हूँ।

सेठ—मैं जानता हूँ दया कहाँ करनी चाहिए। नहीं, कुछ नहीं, जाइए, आप मकान खाली कर दीजिए। मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता। [बच्चे रोने लगते हैं, व्यक्ति दुःखाभिभूत होकर चुपचाप खड़ा रहता है।]

व्यक्ति—मैं एक सप्ताह का समय चाहता हूँ। उस समय तक खाली कर दूँगा।

सेठ—दीनू, हटाओ इन्हें। मुझे फुरसत नहीं है। [बच्चे और जोर से रोने लगते हैं, व्यक्ति के चेहरे पर निराशा की रेखाएँ उभरती हैं।] जाइए साहब, थानेदार साहब आ रहे हैं। अच्छा है उनके पहुँचने के पहले आप मेरा मकान छोड दें।

व्यक्ति—माना मैं किरायेदार हूँ, पर हूँ तो मनुष्य! मेरे भी बच्चे हैं, पत्नी है। ऐसी अवस्था मे आप ही सोचिए मैं इतनी जल्दी कहाँ जा सकता हूँ? [हाथ जोड़कर] कृपा करें।

सेठ—[उसी धुन में] आप भी अजीब आदमी हैं! मैं कह रहा हूँ मेरा सिर न खाओ। जाओ, मैं मकान में आपको नहीं रहने दे सकता।

व्यक्ति—तो आप किसी प्रकार मुझ पर कुछ दिनों के लिए भी दया नहीं दिखा सकते? [गिड़गिड़ाता है; बच्चे रोने लगते हैं। सेठ एक बार बच्चों को देखता है। फिर कुछ सोचता है।]

सेठ—नहीं, नहीं दिखा सकता दया, यह नहीं हो सकता। छह महीने का किराया दे सकते हैं अभी आप?

व्यक्ति—मेरे पास छह मास का किराया नहीं है।

सेठ—आपकी पत्नी का गहना तो है। वही ले आइए।

व्यक्ति—सेठजी उसमें से बहुत-सा तो पिछले दिनों पत्नी-बच्चों की बीमारी में खर्च हो चुका है। इधर मैं कुछ दिनों से बेकार भी हूँ। नौकरी की तलाश में हूँ···

सेठ—मैं ऐसे बेकारों को मकान में नहीं रहने दे सकता। मैं जानता हूँ तुम लोग मक्कार हो।

व्यक्ति—[भुनभुनाकर, विवशता से] मैं भी प्रतिष्ठित आदमी हूँ। दया कीजिए। मेरी-आपकी किराया बढ़ाने पर ही तो लड़ाई हुई है। फिर मैं जितना किराया ठहरा था उतना तो देता ही रहता हूँ। आपने ही उतना किराया नहीं लिया।

सेठ—[कोई उत्तर न पाकर] बहुत बकवास मत करो। जाओ। यदि पुलिस द्वारा मकान से बाहर सामान फेंक दिये जाने का डर हो तो अभी जाकर खाली कर दो।

व्यक्ति—ऐसे में कहाँ जाऊँ सेठजी ?

सेठ—जहाँ सींग समाये, जहाँ जगह मिले, मैं क्या जानूँ ? मेरा सिर न खाओ।

[काका सेठ आता है।]

खाडीराम—छोकरा, हरगिज इस बेईमान का कहना न मानियो। अब मकान सवा सौ में उठेगा [राम राम राम राम] तुम्हें कोई इत्तलाम नहीं है ? तुम्हारे साथ दया करना फिजूल है।

व्यक्ति—सेठजी, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ। थोड़े दिनों की मोहलत दे दें।

दोनों—नहीं, नहीं हो सकता। [काका सेठ कड़ककर] जाओ मकान खाली करो। [राम राम राम राम]

सेठ—तुम चाहे जितना बको, मकान मैं नहीं दे सकता। मैं अभी थानेदार को टेलीफोन करके दरोगा को बुलाता हूँ कि पुलिस की सहायता से मकान खाली कराओ।

[व्यक्ति विवशता और भविष्य के अन्धकार में खोये देखने लगता है। बच्चे इस की अवस्था देख और माँ ओर से रोने लगते हैं। सेठ खिलखिलाता है।]

क्या अब मजा चखता है ? अच्छा नहीं। [टेलीफोन उठाता है। हवलदार, बड़ा मुनीम तथा इनकमटैक्स का एक अफसर प्रवेश करते हैं। सेठ देखता है, वह व्यक्ति रामचन्द्र अफसर के बड़े लड़के के मित्र रहे

है। अफसर बच्चों के सिर पर हाथ फेर रहा है और रामचन्द उससे टूटे-फूटे स्वर में कुछ कहने को उद्यत है···]

बड़ा मुनीम—क्या ये आपके कोई···

अफसर—ये मेरे मित्र रिश्तेदार···राम···

बड़ा मुनीम—कोई बात नहीं, आप मकान में ठहरिए रामचन्दजी, कोई बात नहीं। मैं सेठजी से···

सेठ—[टेलीफोन जैसे का तैसा छोड़कर] आइए-आइए, जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। रामचन्दजी, कोई बात नहीं। आप खुशी से मकान में रहिए। मैं अभी टेलीफोन पर थानेदार से कहे देता हूँ कि मकान खाली कराने की जरूरत नहीं है। आइए, आप लोग यहाँ आइए। [अपने-आप कुरसी ठीक करने लगता है। टेलीफोन उठाकर] मैं छीतरमल बोल रहा हूँ जी, अभी मकान खाली न होगा। कष्ट न करें। [रिसीवर रख देता है।]

चाँदीराम—अरे दीनू, जाकर बाजार से बढ़िया-सी मिठाई तो ला।

सेठ—देख दीनू, बंगाली मिठाई लाना। जा जल्दी [बच्चे सिसकते हुए चुप हो जाते हैं। रामचन्द स्तब्ध। बाकी लोग जैसे-के-तैसे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, जाकर कुर्सियों पर जम जाते हैं। काका सेठ जोर-जोर से गोमुखी के भीतर माला फेरने लगता है। सेठ उन बच्चों के सिर पर हाथ फेरता है।] कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। अपना ही घर है। कोई बात नहीं। जा, जल्दी जा दीनू ! माफ करना, गलती हो गयी। जा, दीनू गया कि नहीं ? रे ए ए···!

[पर्दा गिरता है]

लक्ष्मी का स्वागत

पात्र

रोशन : एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र : उसका मित्र
भानो : उसका छोटा भाई
पिता : रोशन का बाप
माँ : रोशन की माता
अरुण : रोशन का बीमार बच्चा

[दालान में सामने की दीवार से मेज लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है। मेज पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं। दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है; बायें कोने में एक दरवाजा है, जो सीढ़ियों में खुलता है। दायीं दीवार में एक दरवाजा है जो कमरे में खुलता है, जहां इस वक्त रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तसवीरें कीलों से जड़ी हुई हैं। छत पर कागज का एक पुराना फानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की में से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है। हवा की सांय-सांय और मेंह के थपेड़े सुनायी देते हैं।

कुछ क्षण बाद वह खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है, फिर आकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है—और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

दायीं ओर के कमरे से रौशनलाल दाखिल होता है।]

रौशन—[दरवाजे को धीरे से बन्द करके] डाक्टर अभी नहीं आया ?

सुरेन्द्र—नहीं।

रौशन—वर्षा हो रही है।

सुरेन्द्र—मूसलाधार ! इन्द्र का कोप अभी शान्त नहीं हुआ।

रौशन—शायद ओले पड़ रहे हैं।

सुरेन्द्र—हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।

रौशन—भापी पहुँच गया होगा ?

सुरेन्द्र—हाँ, पहुंच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले ! बाजार में घुटनों तक से कम पानी न होगा।

रौशन—लेकिन अब तक उन्हें आ जाना चाहिए था। [स्व बढ़कर, खिड़की के पर्दे को उठाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है] अरुण की तबीयत गिर रही है।

सुरेन्द्र—[चुप]

रौशन—उसकी सांस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है, उसका गल जैसे बन्द होता जा रहा है, उसकी आंखें खुली हैं, पर वह कुछ कह नहीं सकता, बेहोश-सा, असहाय-सा चुपचाप टिटर-टिटर ताक रहा है। आंखें लाल और शरीर गर्म है। सुरेन्द्र, जब वह सांस लेता है, तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है। मेरा कलेजा मुंह को आ रहा है। क्या होने को है, सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र—हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जाएगा। देखो, दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है।

[दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की सांय-सांय]

रौशन—नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र—[सुनकर] यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

[रौशन बढ़कर खिड़की में देखता है, फिर वापस आ जाता है]

रौशन—सामने के मकान का दरवाजा खटखटाया जा रहा है।

[बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फानूस को देख रहा है।]

रौशन—सुरेन्द्र, यह मामूली बुखार नहीं, यह गले की तकलीफ साधारण नहीं, मेरा तो दिल डर रहा है, कहीं अपनी माँ की तरह अरुण भी तो धोखा न दे जाएगा ? [गला भर आता है] तुमने उसे नहीं देखा, सांस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है !

[हवा की सांय-सांय और मेंह के थपेड़े]

रौशन—यह वर्षा, यह आँधी, यह मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक शोर, यह मौत की आवाजें······

[बिजली जोर से कड़क उठती है। दरवाजा जरा-सा खुलता है। माँ झाँकती है।]

माँ—रौशी, दरवाजा खोलो। आओ, देखो शायद डाक्टर आया है।

[दरवाजा बन्द करके चली जाती है।]

रौशन—सुरेन्द्र·

[सुरेन्द्र तेजी से आता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भापी प्रवेश करते हैं। भापी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है।]

डाक्टर—क्या हाल है बच्चे का?

[बरसाती उतारकर खूंटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है।]

रौशन—आपको भापी ने बताया होगा। मेरा तो हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और शाम से सरसाम हो गयी और आज तो वह बेहोश-सा पड़ा है, जैसे अन्तिम साँसों को आने से रोकने का असफल प्रयास कर रहा है।

डाक्टर—चलो, चलकर देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज आती है। माँ तेजी से प्रवेश करती है।]

माँ—भापी! भापी!

[बीमार के कमरे से भापी आता है।]

माँ—देखो भापी, बाहर कौन दरवाजा खटखटा रहा है? [आँखों में चमक आ जाती है] मेरा तो ख्याल है, वही लोग आये हैं। मैंने ड्योढ़ी की खिड़की से देखा है। ताँगे में से दो निकले और बरसातियाँ पहने

भापी—वही कौन?

माँ—वही, जो रौशन के नाते पर अपनी लड़की के लिए कह गये थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी··

[ज़ोर-ज़ोर से कुण्डी खड़खड़ाने की निरन्तर आवाज़ आती है। माधो भागकर जाता है, माँ खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार कमरे का दरवाज़ा खुलता है। सुरेन्द्र तेज़ी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र—माधो कहाँ है ?

माँ—बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[सुरेन्द्र फिर तेज़ी से वापस चला जाता है।]

[माँ एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुश कमरे में घूमती है। माधो दाखिल होता है।]

माँ—कौन है ?

माधो—शायद वे ही हैं। नीचे बिठा आया हूँ, पिताजी के पास, तुम चलो।

माँ—क्यों ?

माधो—उनके साथ एक स्त्री भी है।

[माँ जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाज़ा ज़रा-सा खोलकर देखता है और आवाज़ देता है—]

सुरेन्द्र—माधो !

माधो—हाँ !

सुरेन्द्र—इधर आओ।

[माधो कमरे में चला आता है। कुछ क्षण के लिए खामोशी। केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर, कमरे में फ़ानूस के हिलने की सरसराहट। डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और माधो बाहर आते हैं।]

रौशन—डाक्टर साहब, अब बताइए।

डाक्टर—[अत्यधिक गम्भीरता से] बच्चे की हालत नाज़ुक है।

रौशन—बहुत नाज़ुक है ?

डाक्टर—हाँ !

रौशन—कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर—परमात्मा के घर कुछ कमी नहीं, लेकिन आपने बहुत देर कर दी। डिफ्थीरिया में तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन—हमे मालूम ही नही हुआ डाक्टर साहब, कल शाम को इसे बुखार हो आया, गले मे भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाजार मे हैं—उन्होंने गले मे आयरन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और मिक्श्चर बना दिया, बस दो बार दवा दी, इसकी हालत पहले से खराब हो गयी। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नही, तब रात को भाषी को भेजा, फिर भी आप न मिले। डाक्टर जीवाराम आये थे, पर मैं उनकी दवा देने का हौसला न कर सका और फिर यह झड़ी लग गयी।

[जरा कांपता है।]

—ओले, आंधी और तूफान ! ऐसी प्रलयकारी वर्षा तो कभी न देखी थी।

[बाहर हवा की साँय-साँय सुनायी देती है। डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है, रौशन उत्सुक नजरों से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत की ओर जोर-जोर से हिलते फानूस को देख रहा है।]

डाक्टर—[सिर उठाता है] मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाषी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान और ट्यूब साथ लेता आया था और मेरा खयाल ठीक निकला। भाषी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुस्खा लिख देता हूँ, यही बाजार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक में दवा की दो-चार बूँदें टपकाते रहना और एक घंटे मे मुझे सूचित करना। यदि एक घंटे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और लगाकर जाऊँगा। इंजेक्शन के सिवा डिपथीरिया का दूसरा इलाज नहीं।

रौशन—डाक्टर साहब··· [आवाज भर आती है।]

डाक्टर—घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद······

रौशन—मैं अपनी तरफ से कोई कसर न उठा रखूँगा। सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना, देखो जाना नहीं, यह घर उस बच्चे के लिए वीराना

*[जोर-जोर से कुण्डी खड़खड़ाने की निरन्तर आवाज आती।
भापी भागकर जाता है, माँ खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार
कमरे का दरवाजा खुलता है। सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है।]*

सुरेन्द्र—भापी कहाँ है ?

माँ—बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[सुरेन्द्र फिर तेजी से वापस चला जाता है।]

*[माँ एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी
कमरे में घूमती है। भापी दाखिल होता है।]*

माँ—कौन है ?

भापी—शायद वे ही हैं। नीचे बिठा आया हूँ, पिताजी के पास
तुम चलो।

माँ—क्यों ?

भापी—उनके साथ एक स्त्री भी है।

*[माँ जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाजा जरा-सा
खोलकर देखता है और आवाज देता है—]*

सुरेन्द्र—भापी !

भापी—हाँ !

सुरेन्द्र—इधर आओ।

*[भापी कमरे में चला आता है। कुछ क्षण के लिए खामोशी
केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से खिड़कियों के खड़खड़ाने
का शोर, कमरे में फानूस के हिलने की सरसराहट। डाक्टर, सुरेन्द्र
रौशन और भापी बाहर आते हैं।]*

रौशन—डाक्टर साहब, अब बताइए।

डाक्टर—[अत्यधिक गम्भीरता से] बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन—बहुत नाजुक है ?

डाक्टर—हाँ !

रौशन—कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर—परमात्मा के घर कुछ कमी नहीं, लेकिन आपने बहुत देर
कर दी। डिप्थीरिया में तुरन्त डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन—हमें मालूम ही नहीं हुआ डाक्टर साहब, कल शाम को इसे बुखार हो आया, गले में भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाजार में हैं—उन्होंने गले में आयरन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और मिक्स्चर बना दिया, बस दो बार दवा दी, इसकी हालत पहले से खराब हो गयी। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भापी को भेजा, फिर भी आप न मिले। डाक्टर जीवाराम आये थे, पर मैं उनकी दवा देने का हौसला न कर सका और फिर यह झड़ी लग गयी।

[जरा काँपता है।]

—ओले, आँधी और तूफान! ऐसी प्रलयकारी वर्षा तो कभी न देखी थी।

[बाहर हवा की साँय-साँय सुनायी देती है। डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है, रौशन उत्सुक नजरों से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत को ओर जोर-जोर से हिलते फानूस को देख रहा है।]

डाक्टर—[सिर उठाता है] मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भापी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान और ट्यूब साथ लेता आया था और मेरा खयाल ठीक निकला। भापी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुस्खा लिख देता हूँ, यहीं बाजार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक में दवा की दो-चार बूँदें टपकाते रहना और एक घंटे में मुझे सूचित करना। यदि एक घंटे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और लगाकर जाऊँगा। इंजेक्शन के सिवा डिफ्थीरिया का दूसरा इलाज नहीं।

रौशन—डाक्टर साहब···[आवाज भर आती है।]

डाक्टर—घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद······

रौशन—मैं अपनी तरफ से कोई कसर न उठा रखूँगा। सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना, देखो जाना नहीं, यह घर उस बच्चे के लिए वीराना

है। यह लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते है, सुरेन्द्र !

सुरेन्द्र—तुम क्या कह रहे हो रोशन ? उन्हें क्या यह प्रिय नहीं ? मूल से ब्याज प्यारा होता है

डाक्टर—क्या कह रहे हो रोशनलाल ?

रोशन—आप नहीं जानते डाक्टर साहब ! ये सब लोग हृदयहीन है, आपको मालूम नहीं। इधर मैं अपनी पत्नी का दाहकर्म करके आया था, उधर ये लोग दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र—यह तो दुनिया का व्यवहार है भाई !

रोशन—दुनिया का व्यवहार इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर है ? मैं उससे नफरत करता हूं ! क्या ये लोग नहीं समझते कि वह जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी माता-पिता के लाड़ मे पली होती है, फिर उसके मरते ही सगाइयां लेकर दौड़ते है ! स्मृति-मात्र से मेरा खून उबलने लगता है !

डाक्टर—[चौंककर] देर हो रही है, मैं दवा भेजता हूं। [माधो से] माधो, चलो।

[डाक्टर साहब और माधो का प्रस्थान]

रोशन—सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भांति छोड़ कर चला जाएगा ? मै तो इसका मुंह देखकर सन्तोष किये हुए था। उसी जैसी सूरत, उसी जैसी भोली-भाली आंखे, उसी जैसे मुस्कराते होठ; उसी जैसा सीधा सरल स्वभाव ! मैं इसे देखकर सरला का गम भूल चुका था, लेकिन अब, अब ··

[हाथों से चेहरा छिपा लेता है]

सुरेन्द्र—[उसे ढकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ] पागल न बनो, चलो, उसके घर मे क्या कमी है ? वह चाहे तो मरते हुओं को बचा दे, मृतकों को जीवन प्रदान कर दे !

रोशन—[भर्राये गले से] मुझे उस पर कोई विश्वास नही रहा। उसका कोई भरोसा नहीं—क्रूर और निर्दयी ! उसका काम सताये हुओं को और सताना है, जले हुए को और जलाना है। अपने इस जीवन

मैं हमने किसको सताया, किसको दुख दिया जो हम पर ये बिजलियाँ गिरायी गयीं, हमें इतना दुख दिया गया !

सुरेन्द्र—दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भाभी क्यों नहीं आया।

[उसे दरवाजे के अन्दर धकेलकर मुड़ता है। दायीं ओर के दरवाजे से माँ दाखिल होती है।]

माँ—किधर चले ?

सुरेन्द्र—जरा भाभी को देखने जा रहा था।

माँ—क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र—उसकी हालत खराब हो रही है।

माँ—हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया। ये डाक्टर जो न करें थोड़ा है। बहू के मामले में भी यही बात हुई थी। अच्छी-भली हकीम की दवा हो रही थी, आराम आ रहा था, जिगर का बुखार ही था, दो-दो वर्ष भी रहता है; पर यह डाक्टर को लाये बिना न माना। डाक्टरों को आजकल दिक के बिना कुछ सूझता ही नहीं। जरा बुखार पुराना हुआ, जरा खाँसी आयी कि दिक का फतवा दे देते हैं। 'मुझे दिक हो गया है !'—यह सुनकर मरीज की आधी जान तो पहले ही निकल जाती है। हमने तो भाई इसलिए कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। आखिर मैंने भी तो पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र—डिफ्थीरिया !

माँ—वह क्या होता है ?

सुरेन्द्र—बड़ी खतरनाक बीमारी है माँजी ! अच्छा-भला आदमी दो-चार दिन के अन्दर खत्म हो जाता है।

माँ—[काँपकर] राम-राम, तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला ! उसे जरा ज्वर हो गया, छाती जम गयी, बस। मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र—नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ? आपसे अधिक यह किसे प्यारा होगा ?

[चलने को उद्यत होता है।]

माँ—सुनो !

[सुरेन्द्र रुक जाता है।]

माँ—मैं तुमसे बात करने आयी थी, तुम उसके मित्र हो, समझा सकते हो।

सुरेन्द्र—कहिए।

माँ—आज वे फिर आये हैं।

सुरेन्द्र—वे कौन ?

माँ—सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रोशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हारकर बेचारे चले गये। रोशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र—माँजी···

माँ—तुम जानते हो बच्चा, दुनिया-जहान का यह कायदा ही है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रसाद ही को देख लो। अभी [illegible] के बाद [illegible] भी न निचोड़ा था कि नकोदर वालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद विवाह भी हो गया। और अब तो सुनते हैं, एक बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र—माँजी, रामप्रसाद और रोशन में कुछ अन्तर है।

माँ—यही कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है और यह पढ़-लिख कर माँ-बाप की अवज्ञा करना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार पैसे हैं फिर दस हो गये तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। माँग तो बड़े बनाएँगे मौसी साहब बहादुर, और फिर ऐसा कौन कमाता है···

सुरेन्द्र—तुम्हारा रोशन बिन ब्याहा नहीं रहेगा, इसका मैं यकीन दिलाता हूँ।

माँ—यह ठीक है, पर अब यह शरीफ आदमी मिले हैं। घर अच्छा है, लड़की अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है; और सबसे बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े भले हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की है। ऐसी सलीके वाली है कि क्या कहूँ ! बोलती है तो फूल झड़ते हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है, वह स्वयं कैसे अच्छी न होगी ?

सुरेन्द्र—माँजी, अरुण की तबीयत बहुत खराब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

माँ—बेटा, ये भी तो इतनी दूर से आये हैं। इस आँधी और तूफान में कैसे इन्हें निराश लौटा दूँ ?

सुरेन्द्र—तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती हैं ?

माँ—तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि जरा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों उन्हें बता दे। इतने में लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र—मुझसे यह नहीं हो सकता माँजी, बच्चे की हालत ठीक नहीं; बल्कि शोचनीय है। और आप जानती हैं वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान बच्चे मे केन्द्रित हो गया है। वह उसे अपनी आँखों में बिठाये रखता है, स्वयं उसका मुँह-हाथ धुलाता है, स्वयं नहलाता है, स्वयं कपड़े पहनाता है और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नहीं, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ ?

[बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रौशन दाखिल होता है। बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटी-सी।]

रौशन—सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो ? परमात्मा के लिए जल्दी जाओ ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भापी आया क्यों नहीं ? अरुण तो जा रहा है, प्रतिक्षण जैसे दूर हट रहा है !

[सुरेन्द्र एक बार खिड़की से बाहर देखता है और फिर तेजी से निकल जाता है। माँ रौशन के समीप आती है।]

माँ—क्या बात है, घबराये क्यों हो ?

रौशन—माँ, उसे डिफ्थीरिया हो गया है।

पिता—हाँ, मैं तो शगुन ले लूँगा।

[चले जाते हैं। हुक्के की आवाज दूर होते-होते गुम हो जाती है। माँ खुशी-खुशी कमरे में घूमती है, कमरे में माधी आता है और तेजी से निकल जाता है।]

माँ—माधो!

माधो—मैं डाक्टर के यहाँ जा रहा हूँ!

[तेजी से चला जाता है। बीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।]

सुरेन्द्र—माँजी!

माँ—क्या बात है?

सुरेन्द्र—दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो!

माँ—क्या?......

[आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है। हवा की साँय-साँय।]

सुरेन्द्र—अरुण इस संसार से जा रहा है।

[फानूस टूटकर धरती पर गिर पड़ता है। माँ भागकर दरवाजे पर जाती है।]

माँ—रौशी, रौशी!

[दरवाजा अन्दर से बन्द है।]

माँ—रौशी रौशी!

रौशन—[कमरे के अन्दर से भर्राए स्वर में] क्या बात है?

माँ—दरवाजा!

रौशन—तुम पहले लक्ष्मी का स्वागत कर लो!

माँ—रौशी!

[बाईं ओर के दरवाजे के बाहर से खँखारने की और हुक्के की आवाज।]

पिता—[सीढ़ियों से ही] रौशन की माँ, बधाई हो!

[रौशन के पिता का प्रवेश। माँ उनकी ओर मुड़ती है।]

पिता—बधाई हो, मैंने शगुन ले लिया।

[कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिए रौशन का प्रवेश।]

रौशन—हाँ, नाचो, गाओ, बाजे बजाओ !

[पिता के हाथ से हुक्का गिर जाता है और मुंह खुला रह जाता है।]

पिता—मेरा बच्चा ! *[वहीं बैठ जाता है।]*

माँ—मेरा लाल ! [रोने लगती है।]

सुरेन्द्र—माँजी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो।

[पटाक्षेप]

मानव-मन

सेठ गोविन्ददास

पात्र

पद्मा : २१-२२ वर्ष की एक पतिपरायणा युवती

भारती : पद्मा की पड़ोसिन, एक विधवा स्त्री

कृष्णवल्लभ : पद्मा के पति

मुनीम

[बरामदा आधुनिक ढंग का है और उसी तरह सजा भी है। पीछे की दीवाल दीखती है और दो तरफ खंभों पर डाटें। दीवाल गुलाबी रंग से रँगी है। उस पर श्रीनाथजी, यमुनाजी और श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं के चित्र टँगे हैं। डाटों में से बगीचे का कुछ हिस्सा दिखायी देता है जो उगते हुए सूर्य के प्रकाश से रँग रहा है। बरामदे के सीलिंग से बिजली की बत्तियाँ झूल रही हैं और जमीन पर, जो संगमरमर से पटी है, अनेक सोफे, कुर्सियाँ और टेबिलें सजी हैं। एक कुर्सी पर पद्मा बैठी हुई है और अपने सामने की टेबिल पर रखी हुई एक खुली चिट्ठी ध्यान से पढ़ रही है। पद्मा करीब २१-२२ साल की साधारण कद और सुडौल शरीर की सुन्दरी स्त्री है। रंग गोरा है। रेशमी साड़ी, ब्लाउज और रत्न-जटित आभूषण पहने है। मस्तक पर लाल टिकली है और उसी के नीचे दोनों भवों के बीच में श्रीनाथजी का पीला चरणामृत लगा है। भारती का प्रवेश। उसकी अवस्था करीब ४० वर्ष की है। वह लम्बे कद की दुबली-पतली साधारण तथा सुन्दर स्त्री है। रंग गेहुँआ है। सूनी साड़ी और लम्बुका पहने है। वेश-भूषा से विधवा जान पड़ती है।]

भारती—[पद्मा के निकट आते हुए] बड़े ध्यान से क्या पढ़ रही हो बहन ?

पद्मा—[चौंककर] ओ भारती बहन ! [खड़ी होकर] आओ बैठो बहन !

[भारती और पद्मा दोनों कुर्सियों पर बैठ जाती हैं।]

भारती—क्या पढ़ रही थी ?

पद्मा—उनकी चिट्ठी आयी है।

भारती—तभी इतनी ध्यानावस्थित थी कि मेरी बोली सुनकर भी चौंक पड़ी।

पद्मा—उनका पत्र मुझे ध्यानावस्थित करने को काफी है, यह मैं जानती हूँ, पर ध्यानमग्न होने का एक और भी सबब था।

भारती—क्या ?

पद्मा—उस पत्र के समाचार।

भारती—क्यों, उनके मित्र की तबियत कैसी है ?

पद्मा—वैसी ही है, क्षय ऐसी बीमारी नहीं, जो जल्दी अच्छी हो जाय, या बिगड़ जाय।

भारती—फिर वहाँ से और क्या समाचार आ सकते हैं ?

पद्मा—सुन लो, पत्र ही सुना देती हूँ। [पत्र उठाकर पढ़ते हुए] 'तुम्हें यहाँ का हाल पढ़कर आश्चर्य हो सकता है, पर इस जमाने में इस तरह की चीजें कोई ताज्जुब की बात नहीं है...'

भारती—किस तरह की चीजें ?

पद्मा—यही तो पढ़ती हूँ, सुनो [पढ़ते हुए] 'इस दफा भाभीजी का विचित्र किस्सा है। बृजमोहन की तबियत वैसी ही होते हुए भी, उनके पलंग पर पड़े रहने पर भी, इधर-उधर हिलने-डुलने की ताकत न होने पर भी, भाभीजी का पुराना प्रोग्राम फिर लौट आया है। नित्य प्रातःकाल एक घंटा टब और शावर बाथ में लगता है। फिर बाल सँवारने, पाउडर लगाने, लिपस्टिक और नेल पेंट को काम में लेने में काफी वक्त लग जाता है। रोज नयी साड़ी और ब्लाउज पहना जाता है। हर दिन शाम का समय क्लब में जाता है और अगर किसी दिन गार्डन पार्टी या डिनर या डांस का न्योता आ गया तब तो रात को भी लौटने का कोई निश्चित वक्त नहीं रहता। बृजमोहन को सम्हालते हैं डाक्टर और जहाँ तक भाभी का सम्बन्ध है वहाँ तक एक दफा बृजमोहन की तबियत पूछ लेने से उनके कर्तव्य की समाप्ति हो जाती है।' [पत्र टेबिल पर रखकर भारती की तरफ देखते हुए] कहो बहन, पत्र के समाचार ध्यानावस्थित कर देने के लायक हैं या नहीं ?

भारती—[गम्भीरता से] तुम्हें इन समाचारों से अचम्भा हुआ है ?

पद्मा—अचम्भा ! बड़े से बड़ा अचम्भा जो दुनिया में हो सकता है।

भारती—बृजमोहनजी कितने दिन से बीमार हैं ?

पद्मा—कोई दो साल हो गये होंगे।

भारती—और उनकी पत्नी का और उनका बीमारी के पहले कैसा सम्बन्ध था ?

पद्मा—अच्छे से अच्छा। दोनों कालेज के प्रेमी थे और शादी प्रेम के परिणामस्वरूप हुई थी। तभी तो भाभीजी का व्यवहार और भी आश्चर्य पैदा करता है !

[भारती चुपचाप कुछ सोचने लगती है। पद्मा उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

भारती—कृष्णवल्लभजी पहले-पहल बृजमोहनजी को देखने गये हैं ?

पद्मा—नहीं, एक दफा उनकी बीमारी के शुरू में गये थे।

भारती—उस समय भाभीजी का क्या हाल था ?

पद्मा—इसके ठीक विपरीत। उस वक्त बृजमोहनजी की बीमारी उनके दिवस की चिंता और रात्रि का स्वप्न थी। उनकी दिनचर्या बृज-मोहनजी के नजदीक बैठे-बैठे चौबीस घंटे गुजारना था। डाक्टर और नर्सों के रहते हुए वे ही उन्हें दवा देती थी, वे ही उनका टेम्प्रेचर लेती थीं। वे ही अपने हाथों उनका सारा काम करती थी। तभी···तभी तो अब भाभी के व्यवहार से ताज्जुब होता है। [कुछ ठहरकर] तुम्हें इससे अचम्भा नहीं होता बहन ?

भारती—[गम्भीरता से] नहीं।

पद्मा—नहीं ?

भारती—नहीं बहन, बरदाश्त करने की भी हद होती है।

पद्मा—बरदाश्त करने की हद होती है ?

भारती—जरूर। सहन-शक्ति सीमारहित नहीं है।

पद्मा—ऐसे मामलों में भी ?

भारती—हरेक मामले में।

पद्मा—क्या कहती हो बहन, क्या कहती हो ? पति बीमार हो, खाट

गर पड़ा हो, उठने-बैठने, हिलने-डुलने की ताकत न हो और पर
तरह की वेश-भूषा करे, इस तरह के गुलछर्रे उड़ाये ! कहाँ गया भ
का उनके प्रति प्रेम ? कहाँ गयी भाभीजी की उनकी वह सेवा जो
ह शुरू में थी ?

भारती—तुम्हारी भाभीजी दो वर्षों तक उस तरह अपनी ि
नहीं बिता सकती थी, जिस तरह उन्होंने बृजमोहनजी की बीमारी
न बिताना आरम्भ किया था।

पद्मा—तब तो शायद वे यह चाहती होंगी कि बृजमोहनजी
बृजमोहनजी का जीवन ही...जीवन ही समाप्त हो जाय ?

भारती—सम्भव है।

पद्मा—[उत्तेजना से] वह स्त्री नहीं, सुना बहन, सच्ची स्त्री
पति की बीमारी में, बीमार पति की सेवा में, दो वर्ष नहीं अगर
जीवन भी बीत जाय तो स्त्री को रो-धोकर नहीं, शान्ति से उसे
देना चाहिए।

भारती—यह कहना जितना सरल है, करना उतना ही कठिन

पद्मा—नयी रोशनी की औरतों के लिए होगा जिन्हें न धर्म
विश्वास है और न भगवान पर भरोसा, जिनके लिए विवाह धा
संस्कार नहीं, एक इकरारनामा है, जिनकी एक जीवन में एक
अनेक शादियाँ हो सकती हैं, एक नहीं अनेक पति मिल सकते हैं।

भारती—मैं समझती हूँ सभी के लिए।

पद्मा—[ताने से] क्या अपने अनुभव से कहती हो ?

भारती—[गम्भीरता से] सोच सकती हो। [कुछ ठहरकर] ब
मैं नयी रोशनी की नहीं हूँ। विवाह को इकरारनामा न मानकर सच
धार्मिक संस्कार मानती हूँ। पति को अपना सर्वस्व मानती थी।
उन्हें लकवा हुआ तब मैं खाना, पीना, नींद, आराम सब कुछ छोड़
उनकी सेवा में दत्तचित्त हुई। उनकी बीमारी ही मेरी दिवस की चि
और रात्रि का स्वप्न हो गयी। वह मानसिक दशा बहुत दिन त
रही भी। वे तीन वर्ष तक बीमार रहे, पर आखिर में अ

पद्मा—और तुम आखिर मे, आखिर मे यह भी चाहने लगी थी कि उनका जीवन···उनका जीवन समाप्त हो जाए ?

भारती—[कुछ सोचते हुए] कह नही सकती । जब उनको तकलीफ बहुत बढी तब कई बार यह बात मन मे उठती थी कि उन्हे इतनी तकलीफ न सहनी पड़े तो ही अच्छा है । सम्भव है यह बात यथार्थ मे उनके लिए न उठकर अपने छुटकारे के लिए उठती हो । बहन, तुम्हारी भाभीजी भी बृजमोहन की बीमारी के शुरू मे यह कभी न चाहती होगी कि उनका जीवन समाप्त हो जाए, उन्होने उनके अच्छे करने मे कोई बात उठा न रखी होगी, परन्तु जब उन्हे यह दीख पड़ने लगा होगा कि उनका अच्छा होना अब असम्भव है तब···तब ··

पद्मा—[क्रोध से] बहन, वह कुलटा होगी, वह व्यभिचारिणी होगी । किसी भी हालत मे, किसी भी परिस्थिति मे, कोई हिन्दू स्त्री, कोई सच्ची हिन्दू पत्नी, अपने पति, अपने आराध्यदेव के सम्बन्ध मे ऐसी बात जागृत अवस्था मे तो क्या स्वप्न मे भी नही सोच सकती, चाहे उसका सारा जीवन नष्ट हो जाए, सारी जिन्दगी बर्बाद हो जाए ।

भारती—बहन, तुम जो कहती हो वह आदर्श है । अपने सारे सुखो को तिलाञ्जलि देकर कोई स्त्री अगर अपने को पति मे इस प्रकार विलीन कर सके, कोई प्रेमिका यदि अपने निजत्व को, अपने प्रेमी को इस प्रकार समर्पण मे दे सके तो वह मानवी नही देवी है, वह मनुष्य नही देवता है; लेकिन बहन, 'यह मानव-मन·· मानव-मन · मानव-मन ।'

[दोनों गम्भीरता से एक दूसरी की तरफ देखती हैं ।]

[यवनिका-पतन]

मुख्य दृश्य

स्थान—कृष्णवल्लभ के मकान में उसके सोने का कमरा

समय—दोपहर

[कमरे के तीनों तरफ की दीवालें दीखती हैं जो आसमानी रंग से रँगी हुई हैं । पीछे की दीवाल में कई दरवाजे और खिड़कियां हैं, जिनमें उसके बाहर की बालकनी का कुछ भाग, बगीचे के दरख्तों का ऊपरी

हिस्सा तथा आकाश दिखायी देता है, जिससे जान पड़ता है कि कमरा दुमंजिले पर है। दाहिनी तरफ की दीवाल में दो दरवाजे और एक खिड़की है। इनमें से एक दरवाजा खुला हुआ है। इससे स्नानागार का कुछ हिस्सा दिखायी देता है। बायीं ओर की दीवाल में भी दो दरवाजे और एक खिड़की है। इनमें से भी एक ही दरवाजा खुला है, जिससे नीचे के जीने का कुछ भाग दीखता है। दीवाल पर श्रीनाथजी, यमुनाजी और श्रीकृष्ण की लीलाओं के कई चित्र लगे हैं। कमरे की छत से बिजली की बत्तियाँ और सीलिंग फैन झूल रहा है। जमीन पर कालीन बिछा है, जिसके बीचोबीच चाँदी के पायों का एक पलंग बिछा है। पलंग के पास ही एक टेबिल रखी है जिस पर दवा की शीशियाँ, एक टाइमपीस घड़ी और नोटबुक इत्यादि रखी हैं। पलंग पर कृष्णवल्लभ रुग्ण अवस्था में लेटा है। उसकी उम्र करीब ३० वर्ष की है। वह साधारण ऊँचाई और गोरे रंग का व्यक्ति है, पर बीमारी के कारण अत्यन्त कृश हो गया है। मुख पर पीलापन और आँखों के चारों तरफ कालिमा आ गयी है। सिर के बाल अंग्रेजी ढंग से कटे हैं और दाढ़ी-मूँछ मुँड़ी हुई हैं। वह गले तक एक ऊनी शाल ओढ़े हुए है। उसके नजदीक ही एक कुर्सी पर पद्मा बैठी हुई है। पद्मा की वेशभूषा एकदम सादी हो गयी है। मस्तक की टिकुली और उसके नीचे का चरणामृत उसी तरह लगा है जैसा उपक्रम में था। उसके मुख पर शोक और चिन्ता का साम्राज्य छाया हुआ है।]

कृष्णवल्लभ—[खाँसकर] दो वर्ष हो गये न प्रिये ! दो वर्ष पहले इसी महीने की इसी तारीख को पहले-पहल बुखार आया था।

पद्मा—हाँ प्राणनाथ, दो वर्ष हो गये।

कृष्णवल्लभ—ब्रजमोहन दो वर्ष से कुछ ही ज्यादा तो बीमार रहा ?

पद्मा—आप न जाने क्या-क्या सोचा करते हैं !

कृष्णवल्लभ—[फिर खाँसते हुए] क्यों प्रिये, यह कैसे न सोचूँ ? जो क्षय उसे था वही मुझे है, और वहाँ से लौटने के थोड़े दिन बाद ही हो भी गया।

पद्मा—इससे क्या होता है, क्या इस बीमारी के रोगी अच्छे नहीं होते ?

कृष्णवल्लभ—वृजमोहन तो नहीं हुआ और मैं भी नहीं हो रहा हूँ।

पद्मा—आप हो जाएँगे।

कृष्णवल्लभ—अभी तुम्हें आशा है ? प्रिये, आशा की जगह न होते हुए भी कई दफा मनुष्य आशा को मन में ठूँसने का बलात्कार करता है। इस तरह की आशा अपने आपको धोखा देने की कोशिश करना है। यह झूठी आशा है, अस्वाभाविक आशा है।

पद्मा—[जोर से] क्या कहते हैं नाथ, क्या कहते हैं ? मुझे आशा नहीं विश्वास, पक्का विश्वास है कि आप अच्छे हो जाएँगे।

कृष्णवल्लभ—[पद्मा की तरफ करवट लेकर खाँसते हुए] और तो अच्छे होने के कोई आसार नहीं हैं, हाँ तुम्हारी तपस्या मुझे अच्छा कर दे तो दूसरी बात है !

[पद्मा कोई उत्तर नहीं देती। उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, तुम मानवी नहीं देवी हो। इन दो सालों में तुमने मेरे लिए क्या नहीं किया ? न पेट भर खाया, न नींद भर सोयीं, पूजा-पाठ, जप-दर्शन तक छोड़ दिये। चौबीसों घण्टे मेरे पलंग के पास। कहाँ-कहाँ ले जाकर मेरी आबहवा बदलवायी। दो वर्ष के इस जीवन में किसी प्रकार का भी, कोई भी सुख किसे कहते हैं, वह तुम नहीं जानतीं।

पद्मा—[आँखों में आँसू भरकर] आपके अच्छे होते ही मेरे सारे सुख दूने होकर लौट आएँगे।

कृष्णवल्लभ—[एकटक पद्मा की ओर देखते हुए] और प्रिये, अगर मैं अच्छा न हुआ तो ?

पद्मा—यह कल्पना करने की भी बात नहीं है।

[कृष्णवल्लभ और पद्मा कुछ देर चुप रहते हैं। निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—[अपने दुबले हाथ ऊनी चादर से बाहर निकालकर पद्मा का हाथ अपने हाथ में लेते हुए] प्राणप्यारी, यह जानते हुए भी कि दुनिया में सबसे निश्चित बात मरना है, कोई मरना नहीं चाहता ! मैं भी मृत्यु का आह्वान नहीं कर रहा हूँ। मैं जीना चाहता हूँ। तुम्हारे साथ वे सब सुख भोगने का इच्छुक हूँ जो दो वर्ष पहले प्राप्त थे। [खाँसने के कारण चुप हो जाता है। कुछ ठहरकर] सावन की उमड़ती हुई घटाएँ और

उनमें चमकती हुई बिजली, उन घटाओं का गर्जन और मन्द-
बरसती हुई फुहार, उसमें पपीहे की पीहू और मोर का केका तथा उस
मंडल मे तुम्हारे साथ झूलते हुए झूले की मुझे अब जितनी याद आती
उतनी स्वस्थ दशा मे कभी नही आती थी। [खाँसी के कारण चुप
जाता है। कुछ ठहरकर] वसंत मे खिले हुए फूलो की रग-बिरंगी
रियाँ उनके दर्शन और उनकी सुगंध, मधुर गति से चलता हुआ मल
निल और कोकिल की कुहू और उस वातावरण में हम दोनो की
केलियाँ, तथा गुलाल और अबीर की उड़ान का अब जितना स्मरण आ
है उतना जब मैं अच्छा था तब मुझे न आता था। [खाँसते-खाँसते
रुक जाता है। कुछ ठहरकर] प्राणेश्वरी, मैं वे सारे सुख, सारे आन
फिर भोगना चाहता हूँ, लेकिन···लेकिन प्रिये···[चुप हो जाता है।]

पद्मा—[आँखें पोंछते हुए] लेकिन कुछ नहीं हृदयेश्वर, आपके अ
होते ही हम वे सुख फिर भोगेंगे।

[कृष्णवल्लभ कोई उत्तर नहीं देता। थकावट के कारण पद्मा
हाथ छोड़कर आँखें बन्द कर लेता है।]

पद्मा—[खड़े होकर] क्यों, थकावट मालूम होती है?

कृष्णवल्लभ—यों ही थोड़ी-सी।

पद्मा—मैंने कई दफा कहा आप ज्यादा न बोला करें।

कृष्णवल्लभ—तुमसे बोलकर, पुराने सुखों की याद कर जो थोड़
सा आनन्द मिल जाता है, उसे भी खो दूँ?

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। कृष्णवल्लभ भी कुछ नहीं बोलता
कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, एक बात जानती हो?

पद्मा—क्या नाथ?

कृष्णवल्लभ—मेरे मन में जब-जब यह उठता है कि मैं अच्छा
होऊँगा तब तब मेरे सामने एक चित्र खिंच जाता है।

पद्मा—आपके मन में ऐसी बात ही नहीं उठनी चाहिए।

कृष्णवल्लभ—उसे मैं न रोक सकता हूँ और न तुम। [खाँसता है।

पद्मा—प्राणेश्वर, आप हमेशा आज्ञा दे सकते हैं।

कृष्णवल्लभ—पर तुम मानती कहाँ हो ?

पद्मा—मैं आपकी आज्ञा नहीं मानती ?

कृष्णवल्लभ—और बातो मे मानती हो, पर एक मामले मे नही।

पद्मा—किसमे ?

कृष्णवल्लभ—मेरे हृदय मे जो कुछ उठता है उसे नही सुनती। हमेशा मेरी बात पूरी होने के पहले मुझे रोक देती हो। नतीजा यह निकलता है कि वह सुनकर मन की निकाल लेने मे जो शाति मिलती है उसमे भी मैं वंचित रह जाता हूँ।

पद्मा—तो आपकी वाहियात बातें भी सुना करूँ, उन बातो के बीच मे भी आपको न रोकूँ ?

कृष्णवल्लभ—प्रिये, तुम अनुमान नहो करती बीमार की कल्पनाओ का, तुम अनुभव नहीं कर सकती उस शांति का जो उन कल्पनाओ को अपने सबसे बड़े प्रेमी, अपने सर्वस्व के सामने व्यक्त करने मे मिलती है।

पद्मा—[लम्बी सांस लेकर] अच्छी बात है, हृदय पर पत्थर रख कर जो कुछ आप कहेंगे अब सब कुछ सुन लिया करूँगी।

कृष्णवल्लभ—[कुछ ठहरकर] मैं तुमसे कह रहा था कि जब-जब मेरे मन मे यह उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा तब तब मेरे सामने एक चित्र खिच जाता है। जानती हो किसका ?

पद्मा—बृजमोहनजी का होगा।

कृष्णवल्लभ—नहीं।

पद्मा—तब ?

कृष्णवल्लभ—भाभी का।

पद्मा—[उत्तेजित होकर] उस कुलटा का, उस पापिनी का, जिसने उनकी बीमारी मे भी अपने गुलछर्रे नही छोड़े, जिसने उनके मरते ही दूसरी शादी करने मे देर न की !

कृष्णवल्लभ—प्रिये, भाभी न कुलटा थी और न पापिनी।

पद्मा—उससे बड़ी कुलटा और उससे बड़ी पापिनी न मैंने देखी और न सुनी है।

कृष्णवल्लभ—पहले मैं भी ऐसा समझता था पर अब नहीं समझता।

पद्मा—तो अब आप उसे बड़ी साध्वी, बड़ी धर्मात्मा समझते हैं?

कृष्णवल्लभ—कुलटा और पापिनी तो नहीं समझता [खाँसता है, कुछ रुककर] एक बात और कहूँ?

पद्मा—सब कुछ सुनने का तो मैंने वचन दे ही दिया है।

कृष्णवल्लभ—अगर तुम वैसी होती तो मुझे आज अपनी बीमारी का इतना दुःख न होता।

पद्मा—[आँखों में आँसू भरकर] नाथ, आप यह क्या कह रहे हैं? क्या कह रहे हैं?

[कृष्णवल्लभ कोई उत्तर न देकर खाँसने लगता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये कभी-कभी मुझे अपने से ज्यादा तुम्हारी चिन्ता हो जाती है। जब-जब मेरे मन में उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा, तब-तब मेरे जीने की इच्छा तो और प्रबल हो ही जाती है, तुम्हारे साथ भोगे हुए सुख भी याद आने लगते हैं, और उन्हें फिर से भोगने के लिए भी मैं अधीर हो उठता हूँ। तुम्हें छोड़कर जाना पड़ेगा शायद इसीलिए जाने का मुझे इतना दुःख होता है। पर इन सब बातों के सिवा जिस चीज से मैं सबसे ज्यादा तिलमिला उठता हूँ वह है तुम्हारी इस बाल अवस्था मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा इसकी कल्पना। काश, तुम भी [illegible] के समान हो जाती तो मैं इस चिन्ता से तो...

[कृष्णवल्लभ को खाँसी का ज़ोर से दौरा होता है। खाँसते खाँसते वह बैठ जाता है। पद्मा घबराकर उसकी पीठ सहलाती है। कुछ देर में उसकी खाँसी रुकती है और वह एकदम थककर लेट जाता है तथा आँखें बन्द कर लेता है। जीने से चढ़कर स्वच्छ कपड़ों में एक मुनीम का प्रवेश।]

मुनीम—श्रीनाथद्वारे के समाधानी वहाँ से छप्पन भोग का निमन्त्रण और श्रीनाथजी का बीड़ा लेकर पधारे हैं। यहीं सेवा में आना चाहते हैं।

कृष्णवल्लभ—[धीरे-धीरे] मेरे बड़े भाग्य! ऐसे वक्त श्रीनाथजी का [illegible]। इन्हें भीतर ले आइए मुनीमजी!

मुनीम—जैसी आज्ञा। [प्रस्थान]

कृष्णवल्लभ—[धीरे-धीरे] श्रीनाथद्वारे में छप्पन भोग है और मेरी बदकिस्मती तो देखो, मुझे ही दर्शन न होंगे। इतना ही नहीं, तुम भी न जा सकोगी।

[मुनीम के साथ समाधानी का प्रवेश। समाधानी करीब ५० वर्ष का ठिगना और मोटा आदमी है। शरीर पर लम्बी बगलबंदी पहने है। सिर पर उदयपुरी पाग बाँधे है और गले में दुपट्टा डाले है। उसके हाथों में एक लिफाफा और वल्लभकुली बीड़ा है। कृष्णवल्लभ उठने का प्रयत्न करता है। पद्मा उसे सहारा देकर उठाती और पीछे तकिया लगाकर बैठाती है। वह समाधानी के हाथ जोड़ता है और खड़े होकर पद्मा भी।]

समाधानी—[नजदीक आते हुए] आयुष्मान श्रीमान्! सौभाग्य अचल होय श्रीमती!

[नजदीक पहुँचकर समाधानी अपने हाथ का लिफाफा और बीड़ा कृष्णवल्लभ के हाथों में देता है। कृष्णवल्लभ उन्हें सिर और आँखों से लगा कर हृदय से लगाता है और टेबिल पर रख देता है। सब लोग कुर्सियों पर बैठते हैं।]

समाधानी—श्रीमान की अवस्था के समाचार सूं महाराज श्री नै अत्यन्त खेद भयो। म्हनैं या हेतु पठायो है कि श्रीमान नूं आशीर्वाद सहित छप्पन भोग को निमन्त्रण देऊं और निवेदन करूं कि श्रीमानजी आगे सुधि करते हैं!

कृष्णवल्लभ—महाराज श्री के अनुग्रह के लिए कृतज्ञता के मेरे पास शब्द नहीं हैं, समाधानीजी। मुझसे तो उस घर के अनगिनती वैष्णव हैं और इतने पर भी महाराज श्री की मेरे पर यह कृपा! [खाँसता है और कुछ रुककर] समाधानीजी महाराज, श्रीजी की इस अनुकम्पा से मुझे रोमांच हो रहा है!

समाधानी—आपके से अनगिन वैष्णव! क्या कहे हैं श्रीमान? आपसे तो आप ही हैं!

कृष्णवल्लभ—[आँखों में आँसू भरकर] कैसी मेरी बदकिस्मती कि जिस छप्पन भोग के दर्शन की अभिलाषा बरसों से थी उसके मौके पर मेरा यह हाल है।

समाधानी—श्रीनाथजी आपको शीघ्र स्वस्थ करिहैं। श्रीमा
पधार सकें तो श्रीमतीजी।

कृष्णवल्लभ—[पद्मा की तरफ देखकर] ये…हाँ, ये जरूर जा स
हैं। और अगर ये जाएँ तो मुझे तो उससे जितनी खुशी होगी
किसी दूसरी चीज से हो नहीं सकती। [कुछ खाँसकर] छप्पन भोग
क्या कार्यक्रम है, समाधानीजी ?

समाधानी—पहले वर्ष भर के उन्मत्त वे मनोरथ होयँगे और अ
प्रभु छप्पन भोग आरोगेंगे। [पद्मा से] श्रीमतीजी, आप अवश्य पध
महाराज श्री ने आज्ञा करी है कि श्रीमान न पधार सकें तो अ
पधारवे सूं महाराज श्री कूं परम हर्ष होयगो। आप पधारकर श्रीमा
स्वस्थ होयवे कूं प्रभु सन्निधान में प्रार्थना करें। श्रीनाथजी श्रीमान
शीघ्र ही स्वास्थ्य प्रदान करहिंगे।

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। कृष्णवल्लभ पद्मा की ओर दे
है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—मुनीमजी, समाधानीजी थके-माँदे आये हैं।
को अतिथि-आलय में अच्छी तरह ठहराइए। महाराज की आज्ञा पर
लोग विचार करेंगे। [खाँसता है]

मुनीम—जैसी आज्ञा!

[मुनीम और समाधानी उठते हैं।]

कृष्णवल्लभ—आज शाम को फिर दर्शन देने की कृपा कीजिएगा

समाधानी—जैसी आज्ञा श्रीमान।

[कृष्णवल्लभ और पद्मा हाथ जोड़ते हैं। समाधानी हाथ उठा
आशीर्वाद देता है। मुनीम और समाधानी का प्रस्थान। कृष्णवल्
खाँसता है और लेटने लगता है। पद्मा उठकर टिकाने के तकिये ह
उसे सहारा देकर लिटाती और फिर कुर्सी पर बैठती है। कुछ
निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये!

पद्मा—प्राणनाथ!

कृष्णवल्लभ—आपकी जाने की इच्छा है?

पद्मा—आपको इस हालत में छोड़कर ?

कृष्णवल्लभ—बहुत दिन का काम तो है नहीं।

पद्मा—लेकिन मैं तो एक मिनट के लिए भी आपको नहीं छोड़ सकती।

कृष्णवल्लभ—प्राणप्यारी, अर्धकुंभ पर जब हम हरिद्वार न जा सके थे तब हमने कुंभ पर आने का निश्चय किया था। कुंभ के मौके पर ही मैं बीमार पड़ा। [खांसता है, कुछ ठहरकर] तुम्हें बहुत समझाया, तुम नहीं गयीं। अब श्रीनाथजी के छप्पन भोग का उत्सव है। हर दफा ऐसे मौके नहीं आते।

पद्मा—लेकिन प्राणनाथ, मैं आपको कैसे छोड़ सकती हूँ ?

कृष्णवल्लभ—डाक्टर दोनों वक्त आते हैं, तुम्हारी गैरहाजिरी में नर्स का इन्तजाम हो जाएगा। श्रीनाथजी का छप्पन भोग है, प्राणप्यारी, महाराज श्री ने कृपा कर सम्राधानी के हाथ निमन्त्रण भेजा है, श्रीनाथ जी ने सुधि ली है, महाराज श्री ने आज्ञा दी है।

[पद्मा कोई उत्तर नहीं देती। देर तक निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—पंद्रह-बीस दिन से ज्यादा नहीं लगेंगे, प्रिये !

[पद्मा फिर भी कोई उत्तर नहीं देती। कृष्णवल्लभ पद्मा की तरफ देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, मेरी एक प्रार्थना मानोगी ?

पद्मा—फिर वही बात नाथ प्रार्थना ! आप आज्ञा दें।

कृष्णवल्लभ—[खांसकर] तो मैं आज्ञा देता हूँ प्राणप्यारी, तुम जाओ; श्रीनाथद्वारे जरूर जाओ; जरूर !

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। आँखों में आँसू भर आते हैं।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, श्रीनाथजी के सन्निधान में मेरे स्वस्थ होने के लिए; अपने सौभाग्य के लिए, प्रार्थना······प्रार्थना करना, प्राणप्यारी ! [आँसू भर आते हैं।]

[पद्मा रो पड़ती है। कृष्णवल्लभ को फिर जोर से खाँसी का दौरा होता है।]

[यवनिका पतन]

उपसंहार

स्थान—कृष्णवल्लभ के मकान का बरामदा
समय—सन्ध्या

[दृश्य वैसा ही है जैसा उपक्रम में था। उदय होते हुए सूर्य के स्थान पर डूबते हुए सूर्य की किरणें बाहर के उद्यान को रंग रही हैं। एक तरफ पद्मा के दो सूटकेस, होल्डाल, टिफिन कैरियर, सुराही इत्यादि सामान बँधा हुआ रखा है। पद्मा अपने सामान को देख रही है। उसने फिर से रेशमी साड़ी, ब्लाउज, रत्न-जटित आभूषण धारण कर लिये हैं। उसका मुख प्रसन्न तो नहीं कहा जा सकता लेकिन उस पर उस तरह का शोक और चिन्ता का साम्राज्य नहीं, जैसा मुख्य दृश्य में था। भविष्य के सुख की एक प्रकार की उत्कण्ठा उसके मुख पर दीख रही है। भारती का प्रवेश। वह वैसी ही दीखती है जैसी उपक्रम में थी।]

पद्मा—[भारती के आने की आहट पाकर उस तरफ देख तथा भारती को आते हुए देखकर उसी तरफ बढ़ते हुए] ओ, भारती बहन! आओ बैठो बहन!

[भारती और पद्मा दोनों कुर्सियों पर बैठ जाती हैं।]

भारती—श्रीनाथद्वारे जा रही हो बहन?

पद्मा—[दाहिनी तरफ के बगीचे की ओर देखते हुए] हाँ, वहाँ छप्पन भोग का उत्सव है, वे मुझे भेज रहे हैं।

भारती—वे तुम्हें भेजकर बिलकुल ठीक काम कर रहे हैं और तुम जाकर भी सर्वथा उचित बात कर रही हो।

पद्मा—[भारती की तरफ देखकर] ऐसा?

भारती—बिलकुल। छप्पन भोग के अवसर पर तो वल्लभकुल सम्प्रदाय में वर्ष भर के सभी उत्सवों के मनोरथ होते हैं न?

पद्मा—हाँ।

भारती—तुम्हें और कृष्णवल्लभजी को वर्षा और वसंत बहुत प्रिय थे। श्रीनाथद्वारे में सावन का हिण्डोलोत्सव, वसंत का फूलडोल और

भी अनेक उत्सवों के दर्शन, नित्यप्रति होने वाले राग और गायन आदि से दृश्येन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय को तृप्ति मिलेगी। महाप्रसाद से जिह्वा को शांति प्राप्त होगी। अधिकांश इन्द्रियाँ संतुष्ट हो जाएँगी। हर तरह से मन बहलेगा। इहलोक परलोक दोनों सुधरेंगे।

पद्मा—[भराये हुए स्वर में] बहन···बहन···

भारती—बहन, बरदाश्त करने की भी हद होती है। सहन-शक्ति सीमारहित नहीं है। बीमार के साथ बिना किसी बीमारी के कोई बहुत दिन तक बीमार से भी बदतर हालत में नहीं रह सकता। मृत के साथ जीवित अपने को मृत नहीं समझ सकता। आदर्श की बात दूसरी है। बहन, मानव···मानव-मन···यह मानव-मन···

[यवनिका पतन]

मालव-प्रेम

हरिकृष्ण प्रेमी

पात्र

विजया	:	मालव-कन्या
श्रीपाल	:	विजया का प्रेमी
जयदेव	:	विजया का भाई

•

[विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ होने से लगभग २५ वर्ष पूर्व का काल। चम्बल-तट का एक ग्राम। विजया नदी-तट की एक शिला पर बैठी हुई गा रही है। समय रात का प्रारम्भ, विजया की वय १६-१७ वर्ष के लगभग है। उज्ज्वल गौरवर्ण, शरीर सुगठित लम्बा, अत्यंत आकर्षक स्वरूप। आँखों में आकर्षण के साथ तेज। वेश सुरुचिपूर्ण होते हुए भी उसके स्वभाव के अल्हड़पन को व्यक्त करने वाला। सिर से उत्तरीय का पल्लू खिसक भूमि पर गिर गया है। उत्तरीय के अतिरिक्त एक दुपट्टा वक्ष और कन्धे के आसपास लिपटा पड़ा है। लम्बे बाल वायु में लहरा रहे हैं।]

विजया—[गान]

जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!
जब नयन मैं मूँदती, वह
छवि दिखा मुझको लुभाता।
जब बढ़ाती हाथ तब
कुछ भी नहीं है हाथ आता।
धूल में मिलते अचानक
स्वप्न होकर चूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!

जो सजल बन 'नयन-तारा'
लोचनों में है समाया।
वह गगन का चाँद होकर
दूर से ही मुस्कराया।
इसलिए थमता नहीं है
आँसुओं का पूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!
पालने में श्वास के है
हर घड़ी झूला झुलाया।
क्यों न उसने प्रेम मेरा
आज तक पहचान पाया?
मैं उसी को प्यार करने
के लिए मजबूर।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर!

[विजया गीत गाने में तल्लीन है। श्रीपाल आकर उसकी नजर बचाकर उसके पास खड़ा रहता है। श्रीपाल एक बलिष्ठ और सुन्दर नवयुवक है। उसका वेश योद्धा का है। कमर में तलवार, हाथ में धनुष, कन्धे पर पीछे की ओर तरकश। वय लगभग २५ वर्ष।]

श्रीपाल—*विजया!*

विजया—[गाना बन्द करके खड़ी होकर, उत्तरीय का पल्ला सिर पर डालती हुई।] तुम बड़े अशिष्ट हो श्रीपाल!

श्रीपाल—ऐसे कोमल कंठ से ऐसे कठोर शब्द शोभा नहीं देते विजया!

विजया—तुम अपनी सीमा के बाहर जाते हो।

श्रीपाल—मैंने तुम्हारा अपमान किया है क्या, विजया?

विजया—अपमान तो नहीं किया।

श्रीपाल—फिर ?

विजया—यहाँ एकान्त में मुझे अस्त-व्यस्त वेष में देर तक चुपचाप खड़े देखते रहना !

श्रीपाल—मैं तुम्हें जीवन भर देखना चाहता हूँ, विजया !

विजया—[किंचित् लज्जा मिश्रित क्रोध से] किस अधिकार से ?

श्रीपाल—जिस अधिकार से चाँद तुम्हें इस समय देख रहा है।

विजया—दूर रहकर आकाश से ?

श्रीपाल—हाँ, तुम मेरे जीवन की प्रेरणा हो, स्फूर्ति हो। तुम्हारी स्मृति मेरे रक्त को गति देती है। तुम्हें पाने की इच्छा करना मेरे जीवन का जीवन है—लेकिन तुम्हें पा लेना मेरे जीवन की मृत्यु है।

विजया—उधर देखते हो, श्रीपाल ! बड़ी वर्षा हुई है, इसलिए चम्बल में जल बढ़ गया है। धारा के दोनों ओर चट्टानें हैं। जल को फैलने को स्थान नहीं मिल रहा। वह कितना जोर कर रहा है, कितने वेग से आगे बढ़ रहा है !

श्रीपाल—हमारे-तुम्हारे बीच में इससे भी बड़ी चट्टानें हैं, विजया!

विजया—कौनसी चट्टानें ?

श्रीपाल—तुम्हारा भाई जयदेव ! उसे अपने कुल का अभिमान है। मैं एक साधारण किसान का पुत्र हूँ और तुम भारत की सुप्रसिद्ध मालव जाति की कन्या हो। आकाश की तारिका की ओर पृथ्वी पर पैर रखकर चलने वाला प्राणी कैसे हाथ बढ़ा सकता है ?

विजया—यदि वह तारिका आकाश से उतरकर तुम्हारी गोद में आ गिरे तो ?

श्रीपाल—मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा।

विजया—क्यों ?

श्रीपाल—मैं कृपा या दान नहीं चाहता।

विजया—तो चोरी करना चाहते हो, डाका डालना चाहते हो ? डाका डालना तो कायरता नहीं है ?

श्रीपाल—मैं इतना छोटा नहीं बनना चाहता कि मुझे अपनी ही चीज की चोरी करनी पड़े।

विजया—तब तुम क्या चाहते हो ?

श्रीपाल—बदला ।

विजया—किससे ?

श्रीपाल—तुम्हारे भाई से ।

विजया—अच्छा, तो इसीलिए तुमने शस्त्र पकड़े हैं ?

श्रीपाल—जो हल पकड़ना जानता है, वह शस्त्र पकड़ना भी जान सकता है ।

विजया—लेकिन उसका उचित प्रयोग करना भी जान पाये तब न ?

श्रीपाल—मानवता का तिरस्कार करने वालों—सृष्टि के विरल भाव प्रेम का अपमान करने वालों—के विरुद्ध मेरा शस्त्र होगा । जाता हूँ विजया ! तुम मेरे जीवन की स्फूर्ति हो—मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ !

[प्रणाम करता है ।]

विजया—तुम जा तो रहे हो, श्रीपाल ! लेकिन मुझे भय है तुम मार्ग भूल जाओगे ।

श्रीपाल—तुम्हारा प्रेम मेरा मार्गदर्शक है ।

[श्रीपाल का प्रस्थान]

विजया—[श्रीपाल की ओर देखती हुई] विक्षिप्त युवक !

[विजया कुछ क्षण स्तब्ध-सी खड़ी उसी ओर देखती रहती है जिस ओर श्रीपाल गया है । फिर एक लम्बी साँस लेकर शिला पर बैठ जाती है । कुछ क्षण विचारमग्न रहकर वही गीत गाने लगती है । गीत समाप्त ही हो पाता है कि उसका भाई जयदेव प्रवेश करता है । जयदेव भी लम्बे, बलिष्ठ शरीर, बड़ी आँखों और रोबदार चेहरे वाला मनुष्य है । सैनिक वेश-भूषा । कपड़ों से उसका गुणसम्पन्न होना प्रकट होता है ।]

जयदेव—[विजया के कन्धे पर हाथ रखकर] विजया !

विजया—[चौंककर] ओह, भइया !

जयदेव—चौंक क्यों पड़ी, बहन !

विजया—मैं डर गयी थी !

जयदेव—आज अचानक होकर डर का नाम लेती है, विजया !

विजया—मैं शस्त्र की धार से नहीं डरती, सिंह के भीषण नखों से

नहीं डरती। मैं मनुष्य के शारीरिक बल से नहीं डरती। हिंसा से मैं लड़ सकती हूं।

जयदेव—फिर डरती किससे हो, लड़ किससे नहीं सकती?

विजया—मनुष्य के प्रेम से [ढीले स्वर में] भैया!

जयदेव—[विजया के मस्तक पर हाथ रखते हुए] क्या बात है, विजया?

विजया—मैं अपने हृदय पर विजय नहीं पा सकी हूं! प्राण में आठों पहर ज्वाला जलती है। तुम्हारी वंश-गौरव की दीवार मुझे रोक नहीं सकती। मैं विद्रोह करूंगी।

जयदेव—किससे?

विजया—तुम्हारे अभिमान से। मेरे भाई मालव-कुल-भूषण जयदेव से!

जयदेव—तुम मुझसे युद्ध करोगी?

विजया—हां।

जयदेव—जीत सकोगी?

विजया—अवश्य!

जयदेव—कैसे?

विजया—अपनी बलि देकर। इस शरीर को—जिसमें ऐसा मालव रक्त प्रवाहित है, जो मुझे प्रेम के स्वाधीन-प्रदेश में जाने से रोकता है—चम्बल के उद्दाम प्रवाह में प्रवाहित करके।

जयदेव—बहन, तुम्हें हो क्या गया है?

विजया—तुम तो सब जानते हो, भैया!

जयदेव—यहां शीलरत्न आया था?

विजया—हां।

जयदेव—अभी तुम इतनी चंचल हो उठी हो! विजया, तुम्हें एक काम करना पड़ेगा।

विजया—क्या?

जयदेव—मालव-भूमि को शीलरत्न का मस्तक अर्पित्‌ ।

विजया—मालव भूमि को या तुम्हें?

जयदेव—मुझे नहीं, मालव-भूमि को!

विजया—लेकिन उसे तो तुमने शत्रु बना है, मालव-भूमि से नहीं !

जयदेव—वह मेरे अपराध का दण्ड मालव-भूमि को देना चाहता है।

विजया—मालव-भूमि को या मालव-गण को ?

जयदेव—जब विदेशी शासन हमारे देश पर होगा तब क्या कोई जाति पराधीनता से बच सकेगी ?

विजया—विदेशी शासन मालव पर !

जयदेव—हाँ, जिन शकों ने सिंध और सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया है, उन्हें श्रीपाल ने मालव पर आक्रमण करने को आमन्त्रित किया है।

विजया—तुम लोगों का वंशाभिमान अपने ही देश में देश के शत्रु उत्पन्न कर रहा है। तुमने श्रीपाल का अपमान किया है और निराशा उसे शत्रु के पास खींच ले गयी है।

जयदेव—जिस जाति ने सदा भारत के अंग-रक्षक बनकर आततायियों को देश में आने से रोका है, जिसने सिकन्दर महान की विश्वविजयी यूनानी सेना को हजारों प्राणों की बाजी लगाकर वापस लौट जाने को बाध्य किया, उसे क्यों न अपने ऊपर गर्व हो ? उसे अपनी सैनिकता एवं बल-विक्रम पर अभिमान क्यों न हो ?

विजया—किन्तु जो जाति सैनिक नहीं है, क्या वह मनुष्य ही नहीं है ? कार्य-विभाजन नीच-ऊँच की दीवारें क्यों खड़ी करे ?

जयदेव—यह इन बातों पर विचार करने का समय नहीं है।

विजया—एक श्रीपाल का मस्तक लेकर देश की रक्षा नहीं कर सकोगे।

जयदेव—तू श्रीपाल और देश दो में से किसे चुनेगी ?

विजया—तुम देश और मानवता दोनों में से किसे चुनोगे ?

जयदेव—पराधीनता मानवता का सबसे बड़ा पतन है !

विजया—और प्रेम ?

जयदेव—जो प्रेम देश की हत्या करे उसका गला घोटना ही होगा। श्रीपाल मालवा के मार्गों, नदी-पर्वतों से परिचित है। शक-सैन्य संख्या में हमसे अधिक हैं। उनके पास अपार अश्वारोहिणी दल है, अस्त्र-शस्त्र भी अपरिमित हैं। यदि उन्हें इस देश की भूमि से परिचित व्यक्ति मिल जाय

तो परिणाम हमारे लिए भयंकर है। सोचो विजया, उस समय हमारे देश का क्या होगा ?

विजया—तुम मेरी हत्या कर दो भैया !

जयदेव—तो तुम देश के महत्त्व को नहीं समझी। तुम्हारे पिता, तुम्हारे दादा और तुम्हारी न जाने कितनी पीढ़ियों ने इस भूमि की रक्षा में अपना रक्त सींचा है, बहन ! कितनी बहनों ने अपने भाइयों को रण-भूमि में विसर्जित किया है—कितनी सुन्दरियों ने यौवन के प्रभात काल में पतियों को स्वर्ग का मार्ग दिखाया है। यह एक विजया या एक श्रीपाल का प्रश्न नहीं है—यह देश का प्रश्न है। बोल बहन, तू क्या कहती है ?

[विजया चुप रहती है।]

जयदेव—तू सोचना चाहती है, तो सोच। तू मालव-कन्या है, विजया ! मैं अभी आता हूँ।

[जयदेव का प्रस्थान। विजया हतबुद्धि खड़ी रहती है। फिर वही गीत गुनगुनाने लगती है। श्रीपाल प्रवेश करता है।]

श्रीपाल—विजया !

विजया—अच्छा हुआ तुम आ गये, नहीं तो मुझे तुम्हारे पास जाना पड़ता !

श्रीपाल—हाँ, मैं आ गया हूँ। मैंने अपना निश्चय बदल दिया है। मैं तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।

विजया—लेकिन श्रीपाल, मैंने भी अपना निश्चय बदल डाला है।

श्रीपाल—क्या ?

विजया—मुझे तुम्हारा मोह छोड़ना होगा।

श्रीपाल—फिर तुम मेरे पास क्यों आना चाहती थीं ?

विजया—हम बचपन में एक साथ खेले हैं। अब जीवन का अंतिम खेल भी तुम्हारे साथ खेल लेना चाहती हूँ। बोलो, खेलोगे श्रीपाल ?

श्रीपाल—अवश्य, विजया !

विजया—तो लाओ, तुम्हारे बलिष्ठ हाथों को मैं अपने उत्तरीय से बाँध दूँ।

श्रीपाल—क्यों ?

विजया—आँख-मिचौनी में आँखें बन्द करते हैं, लेकिन यह नये प्रकार का खेल है, इसमें हाथ बाँधने पड़ते हैं। लाओ हाथ बढ़ाओ !

[श्रीपाल हाथ बढ़ाता है, विजया उसके हाथ अपने उत्तरीय से कसकर बाँध देती है। दूसरी ओर से जयदेव का प्रवेश।]

श्रीपाल—[जयदेव को देखे बिना ही] अब आगे ?

विजया—आगे भैया मिलेंगे। [जयदेव की ओर उँगली उठाती है।

श्रीपाल—विजया, तुम ऐसा छल कर सकती हो, इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी !

विजया—मुझे इस बात का अभिमान है कि अपने प्रियतम को मैंने देशद्रोह से बचा लिया।

जयदेव—[श्रीपाल से] तुम मेरे अपराध का दण्ड अपनी मातृभूमि को देना चाहते हो।

विजया—और देश ने तुम्हारे अपराध का दण्ड मुझे देने का निश्चय किया है।

श्रीपाल—जयदेव तुम वीर हो। पुरुषार्थ के लिए प्रसिद्ध मालव-जाति के गौरव हो, तुम छल द्वारा मुझे बन्धन में बाँधना पसन्द करते हो ?

जयदेव—इस समय देश के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न है श्रीपाल ! उदारता के लिए अवकाश नहीं है।

विजया—[श्रीपाल से] प्रियतम, मैं अपने अपराध के लिए क्षमा चाहती हूँ। [गले से हार उतारकर पहनाती हुई] यह मेरे प्रेम का अंतिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयंवर है। आज मालव-जाति की परम्परा के विरुद्ध कृषक-कुमार श्रीपाल को मैं वरमाला पहनाती हूँ। मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही रहूँगी।

श्रीपाल—मेरे हाथ बँधे हुए हैं, विजया ! मैं तुम्हें कुछ प्रतिदान नहीं दे सकता। अपने प्रेम का कोई प्रमाण नहीं दे सकता।

विजया—प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। तुम्हारे चरणों की रज मुझे मिल सकती है ? मेरे लिए यही अमूल्य निधि है।

[चरण छूती है।]

भोर का तारा

जगदीशचन्द्र माथुर

प्रवेश। सांसारिकता का भाव और जानकारी उसके चेहरे से प्रकट
द्वार के पास खड़ा होकर थोड़ी देर तक वह कवि की लीला देखता र
है। उसके बाद—]

माधव—शेखर !

शेखर—[अभी सुना ही नहीं। एक पंक्ति लिखकर] 'स्वर्णिम
को रहा निहार।'

माधव—शेखर !

शेखर—[चौंककर] कौन ?··ओह ! माधव !

[उठकर माधव की ओर बढ़ता है।]

माधव—क्या कर रहे हो, शेखर ?

शेखर—यहाँ आओ माधव यहाँ, [उसके कंधों को पकड़कर, त
पर बिठाता हुआ] यहाँ बैठो। [स्वयं खड़ा है।] माधव, तुमने भो
का तारा देखा है कभी ?

माधव—[मुस्कराते हुए] हाँ ! क्यों ?

शेखर—[बड़ी गम्भीरतापूर्वक] कैसा भोला-भाला, एकटक देखा
रहता है ? जानते हो क्यों ?···नहीं जानते ? [तख्त के दूसरे भाग प
बैठता हुआ] बात यह है कि एक बार रजनीबाला अपने प्रियतम प्रभा
से मिलने चलीं, गहरे नीले कपड़े पहनकर जिसमें सोने के तारे टँके थे।
ज्योंही निकट पहुँचीं, त्योंही लाज की आँधी आयी और बेचारी रजनी को
उड़ा ले गयी। [रुककर] फिर क्या हुआ ?

माधव—[कुछ उत्तेजना के बाद] प्रभात अकेला रह गया ?

शेखर—नहीं। उसने अपनी अँगुलियाँ फँसाकर उनके नीले पट का
छोर बाँध लिया। जानते हो, वह भोर का तारा है न, उसी छोर में
टँका हुआ सोने का कण है एकटक प्रियतम प्रभात को निहार रहा है।
···क्यों ?

माधव—बहुत ऊँची कल्पना है ! फिर छूट गया ?

शेखर—अभी तो और सुनो। ऐसा ही था कि इतने में तुम आ
गए।

पर ही बैठे थे, आकाश में नहीं। [रुककर] मुझे कोस तो नहीं रहे हो शेखर ?

शेखर—[भोलेपन से] क्यों ?

माधव—तुम्हारी परियों और तारों की दुनिया में मैं मनुष्यों की दुनिया लेकर आ गया।

शेखर—[सविक्षेपन से] कभी-कभी तो मुझे तुममें भी कविता दीख पड़ती है।

माधव—मुझमें ?···[जोर से हँसकर] तुम अठखेलियाँ करना जानते हो ?···[गम्भीर होते हुए] शेखर कविता तो कोमल हृदयों की चीज है। मुझ जैसे कामकाजी राजनीतिज्ञों और सैनिकों के तो छूने भर से मुरझा जाएगी। हम लोगों के लिए तो दुनिया की और ही उलझनें बहुत हैं।

शेखर—माधव, तुमने कभी यह भी सोचा है कि इन उलझनों से बाहर निकलने का मार्ग भी हो सकता है ?

माधव—और हम लोग करते ही क्या हैं ? रात-दिन मनुष्यों की नयी-नयी उलझनें सुलझाने का ही तो उद्योग करते रहते हैं !

शेखर—यही तो नहीं करते ! तुम राजनीतिज्ञ और मन्त्री लोग बड़ी संजीदगी के साथ अमीरी-गरीबी, युद्ध और सन्धि की समस्याओं को हल करने का अभिनय करते हो परन्तु मनुष्य को इन उलझनों के बाहर कभी नहीं लाते। कवि इसका प्रयत्न करते हैं पर तुम उन्हें पागल—

माधव—कवि ?··· [अवहेलनापूर्वक] तुम उलझनों से बाहर निकलने का प्रयास नहीं करते, तुम उन्हें भूलने का प्रयास करते हो। तुम सपना देखते हो कि जीवन सौन्दर्य है, हम जागते रहते हैं और देखते रहते हैं कि जीवन कर्तव्य है।

शेखर—[भावुकता से] मुझे तो जहाँ सौन्दर्य दीख पड़ता है; वहाँ कविता दीख पड़ती है, वहीं जीवन दीख पड़ता है, [स्वर बदलकर] माधव ! तुमने सम्राट के भवन के पास, राज-पथ के किनारे उस अंधी भिखमंगी को कभी देखा है ?

माधव—[मुस्कराहट रोकते हुए] हाँ !

शेखर—मैं उसे सदा भीख देता हूँ। जानते हो क्यों ?

माधव—क्यों ? [कुछ सोचने बाद] 'दया: सज्जनस्य भूषणम्।'

शेखर—दया ? हूँ ! [ठहरकर] मैं तो उसे इसलिए भीख देता हूँ क्योंकि मुझे उसमें एक कविता, एक लय, एक व्यथा झलक पड़ती है। उसका गहरा झुर्रियोंदार चेहरा, उसके काँपते हुए हाथ, उसकी आँखों के बेदम गड्ढे [एक तरफ एकटक देखते हुए मानो इस मानसिक चित्र में खो गया हो] उसकी झुकी हुई कमर—माधव, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है मानो किसी शिल्पी ने उसे इस ढाँचे में ढाला हो।

माधव—[इस भाषण से उसका अच्छा खासा मनोरंजन हो गया जान पड़ता है। खड़े होकर शेखर पर शरारत-भरी आँखें गड़ाते हुए] शेखर, टाट में रेशम का पैबन्द क्यों लगाते हो। ऐसी कविता तो तुम्हें किसी देवी की प्रशंसा में करनी चाहिए थी।

शेखर—[सरल भाव से] किस देवी की ?

माधव—[अर्थपूर्ण स्वर से] यह तो उसके पुजारी से पूछो।

शेखर—मैं तो नहीं जानता किसी पुजारी को।

माधव—अपने को आज तक किसी ने जाना है, शेखर ?

[हँस पड़ता है। शेखर कुछ समझकर झेंपता-सा है]

······पागल।···[गम्भीर होकर बैठते हुए] शेखर, सच बताओ तुम छाया को प्यार करते हो ?

शेखर—[मन्द, गहरे स्वर में] कितनी बार पूछोगे ?

माधव—बहुत प्यार करते हो ?

शेखर—माधव, जीवन में मेरी दो ही तो साधना हैं, [तख्त से उठकर खिड़की की ओर बढ़ता हुआ] छाया का प्यार और कविता।

[खिड़की के सहारे दरीचों की ओर मुँह करके खड़ा हो जाता है]

माधव—और छाया ?

शेखर—[वही गहरा स्वर] हम दोनों नदी के दो किनारे हैं, जो एक दूसरे की ओर मुड़ते हैं पर मिल नहीं पाते।

माधव—[उठकर शेखर के कंधे पर हाथ रखते हुए] सुनो शेखर

[illegible]

शेखर—नहीं माधव, उसके भाई देवदत्त से किसी तरह की आशा करना व्यर्थ है। मेरे लिए तो उनका हृदय सूखा हुआ है।

माधव—क्यों ?

शेखर—तुम पूछते हो क्यों ? तुम तो सम्राट स्कंदगुप्त के दरबारी हो। देवदत्त एक मंत्री हैं। भला एक मंत्री की बहन का एक मामूली कवि से क्या सम्बन्ध ?

माधव—मामूली कवि ! शेखर, तुम अपने को मामूली कवि समझते हो ?

शेखर—और क्या समझूँ ? राजकवि ?

माधव—सुनो शेखर, तुम्हें एक समाचार सुनाता हूँ।

शेखर—समाचार ?

माधव—हाँ ! मैं कल रात को राज-भवन गया था।

शेखर—इसमें तो कोई नयी बात नहीं। तुम्हारा तो काम ही यह है।

माधव—नहीं, कल एक उत्सव था। स्वयं सम्राट ने कुछ लोगों को बुलाया था। गाने हुए, दावत हुई। एक युवती ने बहुत सुन्दर गीत सुनाया। सम्राट तो उस गीत पर रीझ गये।

शेखर—[ऊबकर] आखिर तुम यह सब मुझे क्यों सुना रहे हो माधव ?

माधव—इसलिए कि सम्राट ने उस गीत बनाने वाले का नाम पूछा। पता चला कि उसका नाम था—शेखर।

शेखर—[चौंककर] क्या ?

माधव—अभी और तो सुनो ! उस युवती ने सम्राट से कहा कि अगर आपको यह गाना पसन्द है तो इसके लिखने वाले कवि को अपने दरबार में बुलाइए। अब कल से वह कवि महाराजाधिराज सम्राट स्कंद-गुप्त विक्रमादित्य के दरबार में जाएगा।

शेखर—मैं ?

माधव—[अभिनय करते हुए, झुककर] श्रीमान्, क्या आप ही का नाम शेखर है ?

शेखर—मैं जाऊँगा सम्राट के दरबार में ? माधव, सपना तो नहीं देख रहे हो ?

माधव—सपने तो तुम देखा करते हो।······लेकिन अभी मेरा समाचार पूरा कहाँ हुआ है ?

शेखर—हाँ, वह युवती कौन है ?

माधव—अब यह भी बताना होगा ? तुम भी बुद्धू हो। क्या इसी बूते पर प्रेम करने चले थे ?

शेखर—ओह !······छाया ? [माधव का हाथ पकड़ते हुए]···
····तुम कितने······अच्छे हो !

माधव—और सुनो······सम्राट ने देवदत्त को आज्ञा दी है कि वह तक्षशिला जाकर वहाँ के क्षत्रप गोरभद्र के विद्रोह को दबाएँ। आर्य देवदत्त के साथ मैं भी जाऊँगा, उनका मन्त्री बनकर। समझे ?

शेखर—[स्वप्न में] तो क्या सच ही छाया ने कहा ? सच ही

माधव—शेखर, आठ दिन बाद आर्य देवदत्त और मैं तक्षशिला प देंगे।······उसके बाद छाया कहाँ रहेगी ? भला बताओ तो ?

शेखर—माधव !··········[माधव हँस पड़ता है] इतना माधव इतना ? विश्वास नहीं होता।

माधव—न करो विश्वास !······लेकिन भलेमानस, छाया क्या इ कूड़े में रहेगी ? ये बिखरे हुए कागज, टूटी चटाई, फटे हुए वस्त्र ! शेख लापरवाही की भी सीमा होती है।

शेखर—मैं कोई इन बातों की परवाह करता हूँ ?

माधव—तो फिर ?

शेखर—मैं परवाह करता हूँ फूल की पंखुड़ियों पर जगमगाती हुई ओस की, सन्ध्या में सूर्य की किरणों को अपनी गोदी में समेटने वाले बादल के टुकड़ों की, सुबह को आकाश के कोने पर टिमटिमाने वाले तारे की—

माधव—एक चीज रह गयी।

शेखर—क्या ?

माधव—जिसे तुम दिन में वृक्षों के नीचे फैली देखते हो।

[उठकर खड़ा हो जाता है]

शेखर—वृक्षों के नीचे ?
माधव—जिसे तुम दर्पण में झलकती देखते हो।
शेखर—दर्पण में ?
माधव—जिसे तुम अपने हृदय में हमेशा देखते हो।
[निकट आ गया है]
शेखर—[समझकर, बच्चों की तरह] छाया।
माधव—[मुस्कराते हुए] छाया ?
[पर्दा गिरता है]

दूसरा दृश्य

[उज्जयिनी में आर्य देवदत्त का भवन, जिसमें अब शेखर और छाया रहते हैं। कमरा सजा हुआ साफ है। दीवारों पर कुछ चित्र खिंचे हुए हैं। कोने में धूपदान है। सामने तख्त पर चटाई और लिखने-पढ़ने का सामान है। बराबर में एक छोटी चौकी पर कुछ ग्रन्थ रखे हुए हैं। दूसरी ओर एक पीढ़ा है जिसके निकट मिट्टी की, किन्तु कलापूर्ण एक अंगीठी रखी हुई है। दीवार के एक भाग पर एक अलगनी है, जिस पर कुछ धोतियाँ इत्यादि टँगी हैं।

छाया—सौन्दर्य की प्रतिमा, चांचल्य और उन्माद और गाम्भीर्य का जिसमें स्त्री-सुलभ सम्मिश्रण है—गृहस्वामिनी होने के नाते कमरे की सब वस्तुएँ ठीक-ठीक स्थान पर सम्हालकर रख रही है। साथ ही कुछ गुन-गुनाती भी जाती है। जाड़ा होने के कारण तापने के लिए उसने अंगीठी में अग्नि प्रज्वलित कर दी है। कुछ देर बाद पीढ़े पर बैठकर वह अंगीठी को ठीक करती है। उसकी पीठ द्वार की ओर है। अपने कार्य और गान में इतनी संलग्न है कि उसे बाहर पैरों की आवाज नहीं सुनायी देती है।]

प्यार की है क्या यह पहचान ?
चाँदनी का पाकर नव स्पर्श, चमक उठते पत्ते नादान
पवन की परस सलिल की लहर, नृत्य में हो जाती लयमान

मूर्छ का सुन कोमल पद-चाप, फूट उठता चिड़ियों का गान
तुम्हारी तो प्रिय केवल याद, जगाती मेरे सोये प्राण
प्यार की है क्या यह पहचान ?

[धीरे से शेखर का प्रवेश। कन्धे और कमर पर ऊनी दुशाला है, हाथ में ग्रन्थ। गले में फूलों की माला है। द्वार पर चुपचाप खड़ा होकर मुस्कराते हुए छाया का गीत सुनता है।]

शेखर—[थोड़ी देर बाद, धीरे से] छाया ! [छाया नहीं सुन पाती। गाना जारी है, फिर कुछ समय बाद] छाया !

छाया—[चौंककर खड़ी हो जाती है, एक साथ मुख फेरकर] ओह !

शेखर—[तख्त की ओर बढ़ता हुआ] छाया, तुम्हें एक कहानी मालूम है ?

छाया—[उत्सुकतापूर्वक] कौनसी ?

शेखर—[छोटी चौकी पर पहले तो अपनी बगल वाला ग्रन्थ रखता है, और फिर उस पर दुशाला रखते हुए] एक बहुत सुन्दर-सी।

छाया—सुनें, कैसी कहानी है।

शेखर—[बैठकर] एक राजा के यहाँ एक कवि रहता था। युवक और भावुक। राजभवन में सब लोग उसे प्यार करते थे, राजा तो उस पर निछावर था। रोज सुबह राजा उसके मुँह से नयी कविता सुनता, नयी और सुन्दर कविता।

छाया—हूँ ?

[पीढ़े पर बैठ जाती है, चिबुक हथेली पर टेकती है]

शेखर—परन्तु उसमें एक बुराई थी।

छाया—क्या ?

शेखर—वह अपनी कविता केवल सुबह के समय सुनाता था। यदि राजा उससे पूछता कि तुम दोपहर या संध्या को अपनी कविता क्यों नहीं सुनाते तो वह उत्तर देता मैं केवल रात के तीसरे पहर में कविता लिख सकता हूँ।

छाया—राजा उससे रुष्ट नहीं हुआ ?

शेखर—नहीं। उसने सोचा कवि के घर चलकर देखा जाए कि

इसमें रहस्य क्या है। रात का तीसरा पहर होते ही राजा वेश बदलकर कवि के घर के पास खिड़की के नीचे बैठ गया।

छाया—उसके बाद ?

शेखर—उसके बाद राजा ने देखा कि कवि लेखनी लेकर तैयार बैठ गया। थोड़ी देर मे कही से बहुत मधुर, बहुत सुरीला स्वर राजा के कान मे पड़ा। राजा झूमने लगा और कवि की लेखनी आप से आप चलने लगी।

छाया—फिर ?

शेखर—फिर क्या ? राजा महल को लौट आया और उसके बाद उसने कवि से कभी यह प्रश्न नही पूछा कि वह सुबह ही क्यो कविता सुनाता था। भला बताओ तो क्यो नहीं पूछा ?

छाया—बताऊँ ?

शेखर—हाँ।

छाया—राजा को यह मालूम हो गया कि उस गायिका के स्वर मे ही कवि की कविता थी। और बताऊँ ?

[खड़ी हो जाती है]

शेखर—[मुस्कराते हुए] छाया, तुम······

छाया—[टोककर, शीघ्रता और चंचलता के साथ] वह गायिका और कोई नहीं, उस कवि की पत्नी थी। और बताऊँ ? उस कवि को कहानी सुनाने का बहुत शौक था, झूठी कहानी ! और बताऊँ ? उस कवि के बाल लम्बे थे, कपड़े ढीले-ढाले, गले मे उसके फूलों की माला थी, माथे पर······

[इस बीच में शेखर की मुस्कराहट हलकी हँसी में परिणित हो गयी है, यहाँ तक कि इन शब्दों तक पहुँचते-पहुँचते दोनों जोर से हँस पड़ते हैं]

शेखर—[थोड़ी देर बाद गम्भीर होते हुए] लेकिन छाया, तुम्हीं बताओ, तुम्हारे गान, तुम्हारी प्रेरणा, तुम्हारे प्रेम के बिना मेरी कविता क्या होती ? तुम तो मेरी कविता हो !

छाया—[बड़े गम्भीर, उलाहना-भरे स्वर मे] प्रत्येक पुरुष के लिए स्त्री एक कविता है।

शेखर—क्या मतलब तुम्हारा ?

छाया—कविता तुम्हारे सूने दिलों में संगीत भरती है, स्त्री भी तुम्हारे ऊबे हुए मन को बहलाती है। पुरुष जब जीवन की सूखी चट्टानों पर चढ़ता-चढ़ता थक जाता है तब सोचता है चलो थोड़ा मन-बहलाव ही कर लें। स्त्री पर अपना सारा प्यार, अपने सारे अरमान निछावर कर देता है, मानो दुनिया में और कुछ हो ही न। और उसके बाद जब चाँदनी बीत जाती है, जब कविता भी नीरव हो जाती है, तब पुरुष को चट्टानें फिर बुलाती हैं और वह ऐसे भागता है मानो पिंजड़े से छूटा हुआ पंछी! और स्त्री के लिए फिर वही अँधेरा, फिर वही सूनापन!

शेखर—[भग्न स्वर में] छाया, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो।

छाया—क्या एक दिन तुम मुझे भी ऐसे छोड़कर न चले जाओगे?

शेखर—लेकिन छाया, मैं तुम्हें छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ?

छाया—उहूँ, मैं नहीं मान सकती।

शेखर—सुनो तो, मेरे लिए तो जीवन में ऐसी सूखी चट्टानें थोड़ी ही हैं। मेरी कविता ही मेरी हरी-भरी वाटिका है। मैं उसे प्यार करता हूँ क्योंकि मुझे उसमें सौन्दर्य दीखता है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ क्योंकि मुझे तुम्हारे हृदय में सौन्दर्य दीखता है। जिस रोज मैं तुमसे दूर हो जाऊँगा, उस रोज मैं सौन्दर्य से दूर हो जाऊँगा। अपनी कविता से दूर हो जाऊँगा। [कुछ रुककर] मेरी कविता मर जाएगी।

छाया—नहीं शेखर, मैं मर जाऊँगी, किन्तु तुम्हारी कविता रहेगी, बहुत दिन रहेगी।

शेखर—मेरी कविता [कुछ देर बाद]···छाया, आज मैं तुम्हें एक बड़ी विशेष बात बताने वाला हूँ, एक ऐसा भेद जो अब तक मैंने तुमसे छिपा रखा था।

छाया—रहने दो, तुम सदा ऐसे भेद और ऐसी कहानियाँ सुनाया करते हो।

शेखर—नहीं।···अच्छा, तनिक उस दुशाले को उठाओ। [छाया उठाती है] उसके नीचे कुछ है।' [छाया उस ग्रन्थ को हाथ में लेती है] उसे खोलो···क्या है?

छाया—[आश्चर्यान्वित होकर] ओह, [ज्यों-ज्यों छाया उसके

न्ने उलटती जाती है, शेखर की प्रसन्नता बढ़ती जाती है] 'भोर का तारा'। उफ्फोह! यह तुमने कब लिखा? मुझसे छिपकर?

शेखर—[हँसते हुए। विजय का-सा भाव] छाया, तुम्हें याद है उस दिन की जब माधव के साथ मैं तुम्हारे भाई देवदत्त से मिलने इसी भवन मे आया था?

छाया—[शेखर की ओर थोड़ी देर देखकर] उस दिन को कैसे भूल सकती हूँ, शेखर? उसी दिन तो भैया को तक्षशिला जाने की आज्ञा मिली थी, उसी दिन तो उन्होंने तुम्हें और मुझे माताजी का वह पत्र दिखाया था जिसने हम दोनों को सर्वदा के लिए बाँध दिया।

शेखर—हाँ छाया, उसी दिन, उसी दिन मैंने इस महाकाव्य को लिखना आरम्भ किया था। [गहरे स्वर में] आज वह समाप्त हो गया।

छाया—शेखर, यह हमारे प्रेम की अमर स्मृति है।

शेखर—उसे यहाँ लाओ। [हाथ मे लेकर चाव से खोलता हुआ] 'भोर का तारा'। छाया, यह काव्य बड़ी लगन का फल है। कल मैं सम्राट की सेवा में ले जाऊँगा। और फिर, फिर जब मैं उस सभा मे इसे सुनाना आरम्भ करूँगा, तब, तब, सारे उज्जयिनी की आँखें मेरे ऊपर होंगी। महाकाव्य, महाकाव्य! उस समय सम्राट गद्गद् हो जाएँगे और मैं कवियों का सिरमौर हो जाऊँगा। छाया, बरसों बाद दुनिया पढ़ेगी—कविकुल-शिरोमणि शेखरकृत 'भोर का तारा'—हा, हा, हा!

[विभोर हो जाता है। छाया उसकी ओर एकटक देख रही है। सहसा उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखा खिच जाती है। शेखर हँस रहा है।]

छाया—शेखर! [वह हँसे जा रहा है।] शेखर!

[शेखर की दृष्टि उस पर पड़ती है।]

शेखर—[सहसा चुप होकर] क्यों छाया, क्या हुआ तुमको?

छाया—[चिन्तित स्वर में] शेखर!

[चुप हो जाती है]

शेखर—कहो।

छाया—शेखर, तुम इसे सम्हालकर रखोगे न ?

शेखर—बस, इतनी ही-सी बात ?

छाया—मुझे डर लगता है कि···कि···कहीं यह नष्ट न हो जाए कोई इसे चुरा न ले जाए और फिर तुम—

शेखर—हा, हा, हा, पगली ! ऐसा क्यों होने लगा ? सोचने से ही डर गयी ? छाया, छाया, तेरे लिए तो आज प्रसन्न होने का दिन है बहुत प्रसन्न !···इधर देखो छाया, हम लोग कितने सुखी हैं ! और तुम जानती हो, तुम कौन हो ? तुम हो तक्षशिला के अधिपति देवदत्त की बहन और उज्जयिनी के सबसे बड़े कवि शेखर की पत्नी !···तक्षशिला का अधिपति और उज्जयिनी का कवि । हूँ-हूँ-हूँ ।···क्यों छाया ?

छाया—[मन्द स्वर में] तुम सच कहते हो, शेखर, हम लोग बहुत सुखी हैं ।

शेखर—[मग्नावस्था में] बहुत सुखी !

[सहसा बाहर कोलाहल । घोड़े की टापों की आवाज । शेखर और छाया छिटककर चैतन्य खड़े हो जाते हैं । शेखर द्वार की ओर बढ़ता है ।

शेखर—कौन है ?

[सहसा माधव का प्रवेश, थकित और श्रमित; शस्त्रों से सुसज्जित पसीने से नहा रहा है । चेहरे पर भय और चिन्ता के चिह्न हैं ।]

शेखर और छाया—माधव !

शेखर—माधव तुम यहाँ कहाँ ?

माधव—[दोनों पर दृष्टि फेंकता हुआ] शेखर, छाया ! [फिर उस कमरे पर डरती-सी आँखें डालता है मानो उस सुरम्य घोंसले को नष्ट करने से भय खाता हो । कुछ देर बाद बड़े प्रयत्न और कष्ट के साथ बोलता है] मैं तुम दोनों से भीख माँगने आया हूँ ।

[छाया और शेखर के आश्चर्य का ठिकाना नहीं है ।]

छाया—भीख माँगने, तक्षशिला से आये हो ?

शेखर—तक्षशिला से ? माधव, क्या बात है ?

माधव—[धीरे-धीरे, मजबूती के साथ बोलना प्रारम्भ करता है परन्तु ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों स्वर में भावुकता आ... जाती

] हाँ, मैं तक्षशिला से ही आ रहा हूँ। यहाँ तक कैसे आ गया, यह
नहीं जानता। हाँ, यह जानता हूँ कि आज गुप्त साम्राज्य संकट मे है
हमें घर-घर भीख माँगनी पड़ेगी।

शेखर—गुप्त साम्राज्य संकट मे ! क्या कह रहे हो माधव ?

माधव—[संजीदगी के साथ] शेखर, पश्चिमोत्तर सीमा पर आग लग
है। हूणों का सरदार तोरमाण भारत पर चढ़ आया है।

छाया—[भयाक्रान्त होकर] तोरमाण !

छाया—[सहसा माधव के निकट आकर भय से कातर हो उसको
पकड़ती हुई।] तक्षशिला ?

माधव—उसने सिन्धु नदी को पार कर लिया है, उसने अम्भी राज्य
नष्ट कर दिया है। उसकी सेना तक्षशिला को पैरों तले रौंद रही है।

माधव—[उसी स्वर में] सारा पचनद आज उसके भय से काँप रहा
एक के बाद एक गाँव जल रहे हैं। हत्याएँ हो रही हैं, अत्याचार
रहा है। शीघ्र ही सारा आर्यावर्त पीड़ितो के हाहाकार से गूँजने
। शेखर, छाया—मैं तुमसे भीख माँगता हूँ—नयी भीख माँगना
सम्राट स्कन्दगुप्त की, साम्राज्य की, देश की इस संकट में मदद
। [बाहर भारी कोलाहल। शेखर और छाया जड़वत खड़े हैं] देखो
जनता उमड़ रही है। शेखर, तुम्हारी वाणी मे ओज है, तुम्हारे
मे प्रभाव। तुम अपने शब्दों के बल पर सोयी हुई आत्माओं को जगा
हो, युवकों में जान फूंक सकते हो। [शेखर सुने जा रहा है। चेहरे
भावों का आवेग। मस्तक पर हाथ रखता है] आज साम्राज्य को
की आवश्यकता है। शेखर, ओजमयी कविता के द्वारा तुम गाँव-
मे जाकर वह आग फैला दो जिससे हजारों और लाखों भुजाएँ अपने
और अपने देश की रक्षा के लिए शस्त्र हाथ मे ले लें। [कुछ रुक-
शेखर के चेहरे की ओर देखता है। उसकी मुद्रा बदल रही है,
कोई भीषण उद्योग कर रहा हो।] कवि, देश तुमसे यह बलिदान
ता है।

छाया—[अत्यन्त दर्द-भरे करुण स्वर में] माधव ! माधव !!

माधव—[मुड़कर छाया की ओर कुछ देर देखता है, फिर थोड़ी देर

बाद] छाया, उन्होंने कहा था, 'मेरे प्राण क्या चीज है, इसमें तो सहस्रों मिट गये और सहस्रों को मिटना है।'

शेखर—[मानो नींद से जगा हो] किसने ?

माधव—आर्य देवदत्त ने, अन्तिम समय !

छाया—[जैसे बिजली गिरी हो] माधव, माधव, तो क्या भैया···

माधव—उन्होंने वीरगति पायी है, छाया। [छाया पृथ्वी पर घुटनों पर गिर जाती है। चेहरे को हाथों से ढँक लिया है, इस बीच में माधव कहे जाता है, शेखर एक बार घूमता है। उसके मुख से प्रकट होता है मानो डूबते को सहारा मिलने वाला है] तक्षशिला से चालीस कोस दूर विद्रोही वीरभद्र की खोज में वह हूणों के दल के निकट आ पहुँचे। वहीं उन्हें ज्ञात हुआ कि वीरभद्र हूणों से मिल गया है। उनके बीस सैनिक आगे हूणों से घिरे हुए थे। वे तक्षशिला लौट सकते थे और अपने प्राण बचा सकते थे। परन्तु एक सच्चे सेनापति की भाँति उन्होंने अपने सैनिकों के लिए अपने प्राण संकट में डाल दिये और मुझे तक्षशिला और पाटलिपुत्र को चेतावनी देने के लिए भेजा। मैं आज···

[सहसा रुक जाता है, क्योंकि उसकी दृष्टि शेखर पर जा पड़ती है। शेखर चौकी के पास खड़ा है। उसके चेहरे पर दृढ़ता और विजय का भाव है। बाहर कोलाहल कम है। शेखर अपना हाथ बढ़ाकर अपने ग्रन्थ 'भोर का तारा' को उठाता है। इसी समय माधव की दृष्टि उस पर पड़ती है। शेखर पुस्तक को कुछ देर चाव से, विह्वलता से, प्रेम से देखता है। उसके बाद आगे बढ़कर अँगीठी के निकट जाकर उसमें जलती हुई अग्नि को देखता है और धीरे धीरे उस पुस्तक को फाड़ता है। इस आवाज को सुनकर छाया अपना मुख ऊपर को करती है।]

छाया—[उसे फाड़ते हुए देखकर] शेखर !

[लेकिन शेखर ने उसे अग्नि में डाल दिया है। लपटें उठती हैं। छाया सिर-सिर पड़ती है। शेखर लपटों की तरफ देखता है, फिर छाया की ओर दृष्टिपात करता है, एक सूखी हँसी के बाद बाहर चल देता है। कोलाहल कम होने के कारण उसके पैरों की आवाज थोड़ी देर तक सुनाई देती है।]

[माधव द्वार की ओर बढ़ता है]

छाया—[अत्यन्त पीड़ित स्वर में] माधव तुमने तो मेरा प्रभात नष्ट कर दिया।

[माधव उसके ये शब्द सुनकर बाहर जाता-जाता रुक जाता है। मुड़कर छाया की ओर देखता है और पीछे की खिड़की के निकट जाकर उसे खोल देता है। इससे बाहर का कोलाहल स्पष्ट सुनायी देता है। शेखर और उसके साथ पूरे जनसमूह के गाने का स्वर सुन पड़ता है।]

अभय जाग जनता जनार्दन!
कहाँ हैं भयंकर तरंगें, कहाँ सो रहा क्रुद्ध गर्जन?
महोदधि सलिल सी उमड़ तू, बुलाता तुझे मैं प्रभञ्जन।
अभय जाग जनता जनार्दन!

[शेखर का स्वर तीव्र है। माधव खिड़की को बन्द कर देता है। पुनः शान्ति। इसके बाद माधव मन्द परन्तु दृढ़ स्वर में बोलता है।]

माधव—छाया, मैंने तुम्हारा प्रभात नष्ट नहीं किया। प्रभात तो अब होगा। शेखर अब तक भोर का तारा था। अब वह प्रभात का सूर्य होगा।

[छाया धीरे-धीरे अपना मस्तक उठाती है।]

[पर्दा गिरता है]

स्ट्राइक

भुवनेश्वर

पात्र

पहला दृश्य

पुरुष [श्रीचन्द]

स्त्री

दूसरा दृश्य

तीन पुरुष

एक युवक

पुरुष [श्रीचन्द]

तीसरा दृश्य

पहले दृश्य का पुरुष

दूसरे दृश्य का युवक

[एक मध्यवर्गीय बँगले के खाने का कमरा, जो बरामदे में पर्दे डालकर बना लिया गया है। एक बड़ा-सा साइड टेबिल जिस पर चीनी के बरतन, प्लेट-प्याले नुमायशी ढंग से रखे हैं। पास में एक छोटी मेज पर फोर्क, क्वाकर ओट्स, पाल्सन बटर और अचार के दो अमृतबान सजे हैं। खाने की मेज अण्डाकार है, जिसके चारों तरफ चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। दो पर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हैं, पुरुष, सुपुरुष, स्त्री कुछ बोले तो पता चले, कम से कम दस मिनट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी रहे हैं।]

स्त्री—[चाय का प्याला घुमाते हुए] तो सरदार साहब बहुत चौंके ?

पुरुष—[अनमना] हूँ···

स्त्री—[कुछ कहने के लिए साँस भरकर रह जाती है।]

पुरुष—तो आज नौकर दोनों छुट्टी ले गये हैं ?···

स्त्री—[दो घूंट चाय पीकर रूमाल से होंठ पोंछती हुई] सरदार साहब की डाइरेक्टरों में तो खूब चलती है ?···

पुरुष—[हास्यास्पद उत्साह से] यही ! यही तो इन कम्बख्तों को मिटा देता है। यह समझते हैं कि बहुमत उन्हें गदहे से बछड़ा बना देगा ! कम्बख्त यह नहीं समझते कि अब बहुमत के माने ही बदल गये हैं। बहुमत थोड़े से बेजरर अधमरे बेपुओं का नाम थोड़ा ही है ! वह शक्ति का नाम है और वह हमेशा एक आदमी—एक—आदमी में होती है।

[स्त्री चुपचाप चाय उँडेलती है और दूध डालकर ध्यान से प्याले को

देख रही है। पुरुष बेरहमी से मक्खन लगा रहा है खामोशी-सी हो जाती है।]

पुरुष—सरदार साहब, राजा साहब, बाबू साहब, सब दिक्कत है। कम्बख्त जीवन की कला नहीं जानते। भिख पाजियों की तरह यह मौत तक खिसकते जाते हैं! जब उ मैं उनसे भीख नहीं माँगता, उनके तलवे नहीं सहलाता, भ षड्यन्त्र नहीं करता तो मुँह बाकर रह गये! जी हाँ, गये! [प्याला रखकर हँसता है] यह कुछ समझते-बूझ जब कभी इनके ठोकर लगती है, तो बस खड़े होकर म [आवाज धीमी करता है] लेकिन कपड़ों के नीचे यह मोटे थुलथुले, गन्दे हैं गन्दे! हाँ, व्यवस्थित समाज में इन जरूर है—यह ठोकरें खूब झेल लेते हैं! डिविडेण्ड कम हु पाँव फूल गये; किसी कौंसिल के जिरिमले ने जिताबी अंग्रे की धमकी दे दी, इनके हाथ-पाँव फूल गये, यह खोखला ग नाटकीय ढंग से हिलाते हुए] मैंने साफ ऐलान कर दिय साल तक कोई डिविडेण्ड नहीं बाँटूंगा। [सही तौर से है।] अँगूठा कर लो मेरा!

[स्त्री चाय खत्म करके घड़ी की तरफ देखती है और मुस्कुराती है, पुरुष बेचारा क्या समझे! वह एकाएक ना कमरे में फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

पुरुष—[उदास-सा] यों आज नौकर दोनों गायब ? चाय बनायी है, पर शाम को क्या होगा ? मेरी तो मीटिंग पर खत्म होगी।

स्त्री—[रूमाल में अंगुलियाँ लपेटे हुए] मैं···मैं [सहसा]

पुरुष—कहाँ जा रही हो ? कहाँ ?

स्त्री—[बाहर की तरफ रूमाल हिलाते हुए] वहाँ।

पुरुष—[बाहर की तरफ देखता है] वहाँ ? बाजार, शापि

स्त्री—नहीं, मैं तो लखनऊ जा रही हूँ, आखिरी बं और आऊँगी।

पुरुष—[अपना आश्चर्य भरसक छिपाते हुए] लखनऊ, जी.आई. पी., आखिर क्यों !

स्त्री—[वाय खत्म कर चुकी है] कुछ नहीं, ऐसे ही घूमने । सरदार साहब की बीबी हैं, मिसेज निहाल हैं, मैं हूँ, मिस मित्तर हैं—उन्हीं को कुछ काम है, न जाने रेडियो लेने जा रही है क्या ?

पुरुष—[अंगुली पोंछ रहा है] तो यह कहो ! [रुककर] लेकिन कार क्यों नहीं ले जाती ?

स्त्री—नहीं, कार नहीं । ज्यादा से ज्यादा जी.आई.पी. से लौट आएँगे । वही शायद आखिरी गाड़ी है ।

पुरुष—[जेब से सोने की जेब-घड़ी निकालकर और उसे बास्केट पर पोंछकर] तो जी.आई.पी. यहाँ आती है १०-१५ पर, तुम यहाँ १०-२५ पर आ जाओगी । कार मैं पम्प पर छोड़ दूँगा —अरे मिलखीराम के पेट्रोल पम्प पर । खाने के लिए यह करना कि कार में टिफिन कैरियर रख लूँगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरा ले आना, न होगा रोटियाँ वहीं बन जाएँगी [जेब में घड़ी रख लेता है और जेबें टटोलकर सस्ता सिगरेट केस निकालता है और एक सिगरेट जलाता है । धुआँ छोड़ते हुए] अब सरदार साहब के मिजाज ठिकाने आ जाएँगे । कोई उसूल नहीं, कोई हौसला नहीं । भला इसे जिन्दगी कहते हैं ?

स्त्री—तो जी आई. पी. यहाँ गाड़े दस पर आती है ?

पुरुष—[फिर घड़ी निकाल लेता है और फिर उसे पोंछता है] नहीं, १०-१५ पर । और जी.आई.पी. की गाड़ियाँ लेट नहीं होतीं—यह ई.आई.आर. नहीं है । [जैसे कोई अपनी ही खोज का बखान कर रहा हो] दुनिया का भविष्य उचित समय पर उचित काम करने वालों के हाथ में है । दुनिया की सारी दौलत, सारा आराम, सारा जस उसका है जो अपनी जगह पर कायम है और काम का जो छोटा हिस्सा उसका है उसे मशीन की तरह पूरा कर रहा है । एक बहुत बड़ा लेखक है बरनार्ड शा । उसने कहा है······

स्त्री—[सहसा ऊबी-सी] मिसेज निहाल ने कहा तो था कि वह अपनी कार भेजेंगी । तुम्हें मीटिंग में कब जाना है ?

पुरुष—[चौंककर घड़ी की तरफ देखता है] साढ़े चार ! तो मो मैं चपा—[गुनगुनाता है]—चार बजकर सत्रह—तीन या चार मिनट मुझे ड्यूक कम्पनी में लगेंगे, चार-इक्कीस; खैर, तो चलो तुम्हें सिढ़ी के यहाँ छोड़ दूँगा, वहाँ से···या आओ निहाल के यहाँ तक ! दो मिनट की ही तो बात है।

स्त्री—[अंगड़ाई लेते हुए] अच्छा ? [खड़ी हो जाती है] यही साड़ी पहने रहूँ या दूसरी [मुड़कर देख रही है] पहन लें।

पुरुष—[सिगरेट दो-तीन बार घूमकर फेंकते हुए] जैसा तुम्हारा जी चाहे, लेकिन तुम्हें मेरे सर की कसम, बतला दो लखनऊ में क्या है ?

स्त्री—[बरबस मुस्कराती हुई] लखनऊ में ? बहुत-सी चीजें, छोटा-बड़ा इमामबाड़ा, चिड़ियाघर हजरतगंज, अमीना······

पुरुष—नहीं, मैं पूछता हूँ, आज शाम को कोई खास बात ?

स्त्री—[जाते हुए] आज शाम को खास बात ? कोई खास बात नहीं है।

पुरुष—[जैसे एक बड़ी मुहिम के लिए तैयार होते हुए] यहाँ आओ, यहाँ बैठो, [स्त्री घूमकर खड़ी हो जाती है] बैठो, मैं देखता हूँ, तुम कुछ दिनों से ऐसी ही हो रही हो। मैं जानता हूँ, तुम्हारी यहाँ तबीयत नहीं बहलती, पर छुट्टियों में निर्मल आ जाएगा, मोनी भी शायद यहीं आये। तुम्हें मालूम हुआ, मोनी अबकी बी.ए. में फर्स्ट रही। लेकिन हाँ, बताओ यह तुम्हें हुआ क्या है ?

स्त्री—होता क्या ? कुछ नहीं हुआ, तुम अगर मेरी तबीयत का एक खाका बनाओ तो लकीर वहाँ······वहाँ बिजली तक पहुँच जाए।

पुरुष— [उत्साहित होकर] हाँ, लेकिन फिर यह बेताबी क्यों है ? देखो, आदमी के सामने बड़ी समस्या यह है कि वह अपनी बची-खुची शक्ति किस तरह काम में ले आये। आदिम जंगलीपन से लेकर आज तक की सभ्यता तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दुःखी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस शक्ति को काम में लाने के लिए। फिर दुःख या सुख तो इतनी ठोस चीजें हैं कि एक दिन तुम देखोगी कि यह शीशियों में बिका करेंगी, शीशियों में। मुझे इन टिसुए बहाने वालों से नफरत है

नफरत ! यह सिर्फ हारते ही नहीं हैं, यह तो अपनी हार के गीत
ते है, नारे लगाते हैं ।

स्त्री—अच्छा उठो, फिर तुम कार पर न पहुँचाओगे ?

पुरुष—[फिर घड़ी निकाला और उसे पोंछता है] असम्भव ! तुम
व मिसेज निहाल का इन्तजार करो ।

[पुरुष जल्दी से भीतर चला जाता है, स्त्री वहीं बाहर की तरफ
रती हुई बैठी रहती है । थोड़ी देर में पुरुष भीतर से आता है, बगल में
राना फेल्ट हैट दाबे हाथ के छोटे डण्डे को रूमाल से पोंछ रहा है ।]

पुरुष—१०-१५ पर तुम स्टेशन आ जाओगी, वहाँ से मिलखीराम
क का रास्ता है ५ मिनट का, १०-२०, यानी १०-३० तक तुम यहाँ
गी, यानी १०-४० तक हम-तुम यहीं इसी टेबुल पर डिनर के लिए बैठे
गे ? मैं स्टेशन आ जाता, लेकिन मिस मित्तर—तुम स्वयं जलोगी ।
यहीं हँसी हँसता है, स्त्री पर जैसे इसका कोई असर नहीं होता] अच्छा
रियो !

[सीढ़ियों पर तेजी से उतरता हुआ चला जाता है । स्त्री वैसे ही
ठी रहती है, फिर अनमनी भीतर उठकर चल देती है । स्टेज पर एक-
रगी अन्धकार हो जाता है । बीच में दो बार रोशनी होती है, जिसमें
रे लॉन में खाली मेज, और कुर्सियाँ दिखलाई देती हैं । घड़ी जिसमें पहले
-२० बजा है फिर ९ ।]

दूसरा दृश्य

[एक मध्यवर्गीय क्लब का कमरा, तेज लीलो रोशनी हो रही है ।
मेजों पर ताश और भरी हुई एश-ट्रे बिखरी हैं, कुर्सियाँ भी अनेक आरों
तरफ तितर-बितर पड़ी हैं । कोने में एक बड़ी फ्रेंच खिड़की (खिड़की) के
सामने सोफों पर तीन आदमी बैठे हैं । लॉन में सिर्फ उनकी पीठें दिखायी
दे रही हैं । पास ही एक कुर्सी पर सामने की छोटी मेज पर तुरबि से
चपटे पड़े एक युवक बराबर ताश फेंट रहा है । खिड़की के फ्रेम में तारों
से सिला हुआ आकाश तसवीर की तरह जड़ा हुआ है । दीवार की

घड़ी ८-४५ बजा रही है। कमरे में सब खामोश हैं, पर निस्तब्धता नहीं है।]

पहला—[आवाज वृद्ध-सी है] न मालूम मैं यह मनहूस ब्रिज का खेल क्यों खेलता हूँ ?

दूसरा—[जम्हाई लेता हुआ] क्या किया जाय, आओ कोई और धंधा ऊँचा करें।

तीसरा—यह लोग आते भी तो नहीं। [कुर्सी पर के युवक की तरफ घूमकर] देखो जी तुम मिश्रित समाज की चर्चा चलाओ…

[तीनों आदमी घूमकर युवक की तरफ देखते हैं। तीनों आदमी मोटे, अधेड़, कोमती कपड़े पहने और अत्यन्त सन्तुष्ट हैं।]

युवक—[झेंपता-सा] मैं कैसे उठा सकता हूँ। हाँ, मेरी पत्नी आती तो मैं जरूर ऐसा करता। देखिए उन्हें…

[तीनों एकबारगी 'हूँ' करते हैं और फिर मुड़ के बैठ जाते हैं और खामोश हो जाते हैं। युवक फिर ताश फेंटने लगता है।]

पहला—[जेब से सिगरेट-केस निकालता है और फिर रख लेता है।] चलो भाई चलें, मुझे तो सुबह से ही काम है।

दूसरा—[मुड़कर घड़ी देखते हुए] यह श्रीचन्द धुत्ता दे गया!

पहला—नहीं भाई कहीं फँस गया होगा। उसके तो मकड़ी की तरह सौ धोमें हैं।

युवक—वह आएँगे जरूर, मेरी तो दावत कर गये हैं।

तीनों—[मुड़कर] अच्छा? और पट्ठे की गप्पी आज है नहीं!

[सब एक-दूसरे की ओर देखते हैं]

युवक—अच्छा! मुझे पता होता तो मैं कभी प्रतीक्षा न करता।

पहला—हुँ—श्रीचन्द को देखो, जब वह कचहरी छोड़कर व्यापार में आ रहा था, मुझे इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी, पर देखो—आज वह एक कम्पनी का सर्वेसर्वा बन गया है। [हँसता है।]

दूसरा—[जम्हाई लेता और अंगूठियों वाली अंगुली से चुटकियाँ बजाता है।] मैं तो भाई दिन-ब-दिन मानता जाता हूँ कि भाग्य भी कोई चीज है।

वक ताश रखकर एकाग्र हो, इन लोगों की बातें सुनता है।]
रा—[उठ खड़ा होता है] आओ भाई, चलो। आइए मिस्टर
आपको कार पे छोड़ आऊँ घर तक...
ना—बैठो न, श्रीचन्द आता ही होगा।
क—और आपसे भी तो उन्होंने कार में छोड़ आने के लिए
।
रा—[बैठते हुए] हूँ, हूँ, तब तो रुकना ही पड़ेगा।
क कोई भी बात शुरू करने का इरादा करता है।]
क—आज मेरठ षड्यन्त्र का मामला शुरू हो गया।
गें—क्या? अच्छा!
नों ऐसी बातों की तरफ उदासीनता दिखलाना चाहते हैं, पर कुछ
हो रहे हैं।]
ना—श्रीचन्द ने इसके बारे में खूब कहा! [हँसता है। सब उसकी
र सुनना चाहते हैं।]
—[कोट का कालर ठीक करते हुए] मेरे साथ कमिश्नर ने
, उन्होंने मेरठ की बात चलायी। आप छूटते ही हिन्दुस्तानी में
र साहब, इनको तो ऐसे ही छोड़ देना चाहिए, यह तो हम लोगो
हैं।
तनेबल हँसी हँसते हैं, युवक भी उसमें शामिल होता है।]
—हर देश, हर सरकार के सामने समस्या सिर्फ यही है कि
उसके कर कम से कम किये जा सकते हैं। आप कर कम कर
या अपने-आप सम्पन्न होगी।
—हम लोगों-सा कोई देसगेशार आदमी रूस जाकर देखे कि
ने वहाँ क्या कर दिखाया है कि दुनिया भर को रूस के सामने
है।
—यानी खुदा तक को!
तीनों ऊबी-सी हँसी हँसते हैं। बाहर कुछ खटका होता है।
हर की तरफ देखते हैं। पहले दृश्य का पुरुष संतोष और
से आता है।]

पुरुष—[अपना हैट और डंडा एक खाली मेज़ पर रखते हुए] तो तुम लोग मेरा इन्तज़ार कर रहे थे ! त्रिज खत्म कर दिया ?

दूसरा—[कमरे के बीच में आते हुए] आज सहाय फिर हार गये।

पुरुष—[हँसता हुआ] सहाय तुम बड़े हरैले हो !

[अब सब अपनी जगहों से उठकर कमरे के बीच में आ गये हैं।]

पहला—जीत तो सब तुम्हारे हिस्से में पड़ी है !

पुरुष—अरे भाई, क्या जीत क्या हार ? यहाँ तो इसका कभी सपने में भी ख़याल नहीं करते। हम तो ईमानदारी से जीना चाहते हैं। मैं फिर कहता हूँ, जीवन एक कला है और सबसे बड़ी कला !

दूसरा—[जम्हाई लेते हुए] चलो भाई, बड़ी देर हो गयी। [सब घड़ी की तरफ देखते हैं, पुरुष फिर अपनी सोने की घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है।] चलो, घर तक छोड़ना पड़ेगा।

[तीनों भीतर जाकर अपना हैट लेते हैं, केवल युवक नंगे सिर है।]

पहला—यह चौकीदार न जाने कहाँ मर गया है !

दूसरा—कहता है ? क्या खूब ! क्या नयी पत्नी कर लाया है ? ज़रा सोचो, नयी पत्नी !

[सब जवानों की तरह हँसते हैं, सिर्फ युवक कुछ झेंपा-झेंपा-सा है और सबसे पीछे बाहर जाता है। बाहर बरामदे से दो या तीन बार आवाज आती है 'चौकीदार !' फिर मोटरों के स्टार्ट होने की और फिर खामोशी। स्टेज पर अँधेरा हो जाता है, पर बीच में दो या तीन बार रोशनी होती है और किसानों का-सा बुझा हुआ चेहरा लिये एक चौकीदार मेज़ झाड़ता और जले हुए सिगरेट बीनता हुआ दिखायी देता है।]

तीसरा दृश्य

[पहले सीन के कमरे का बरामदा, लम्बा और साधारण से ज़रा ऊँचा। लम्भों के पास बड़े-बड़े पाम खड़े हैं, लम्भों पर बेलें सी फैली हैं, दरवाजे सब बन्द हैं, जिनके सामने तीन-चार बेमेल कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। सीढ़ियों पर एक बड़ा झबरा कुत्ता लेटा है। दृश्य के शुरू में कोई आदमी नहीं

दिखलायी देता है पर तत्काल ही गृहस्वामी और युवक जो क्लब से आ रहे हैं, सीढ़ियों पर चढ़ते दिखाई देते हैं। कुत्ता सिर उठाकर धीमी जानकारी से गुर्राता है, फिर पूंछ हिलाता हुआ पीछे-पीछे बरामदे में लेट जाता है। स्टेज पर कम से कम रोशनी है।]

पुरुष—[मेहनत से चढ़ते हुए] तो यह कहिए ! [जेब टटोलता है] रुकिए······

[पुरुष एकबारगी सीढ़ियों से उतरकर बंगले के पीछे की तरफ जाता है। युवक वहीं खड़ा होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखकर मुसकरा रहा है। शीघ्र वह फिर वापस आ जाता है और उतावली से जेब टटोलता है।]

पुरुष—अब यह नहीं पता, मेरी पत्नी चाभी मुझे दे गयी या कहीं रख गयी ? नौकर···मैं कहता हूँ कि मेरी जिन्दगी में अगर कोई सुर बेसुरा है तो यह नौकर। छुट्टी-छुट्टी-छुट्टी, रोज-रोज इनको छुट्टी चाहिए, कम्बख्त यह नहीं जानते···

[युवक सहसा एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। फिर पुरुष स्विच टटोलकर बत्ती जला लेता है और फिर दूसरी कुर्सी पर ठीक युवक के सामने बैठ जाता है।]

पुरुष—[एकबारगी हँसता हुआ] अगर स्विच कमरे के भीतर होता तो लुत्फ आ जाता !

युवक—खैर यहाँ भी तो आराम से बैठे हैं।

पुरुष—शायद ६-३० बजा है, [घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है] ६-२७, खैर, मेरी पत्नी यहाँ १०-३० तक आ जाएगी। खाना वह साथ ही लाएगी। [जम्हाई लेता है] और कहिए।

युवक—[उत्साह से] मुझे कोठी तो खैर मिल गयी······

पुरुष—[जूते को फटफटाते हुए] खैर, कोठी-ओठी तो है, आपने यह नहीं बताया कि आपने शादी क्यों नहीं की ?

युवक—[कठिनता से] नहीं की—नहीं का कोई कारण तो है नहीं।

पुरुष—[मुस्कराता है] मैं सच-सच कहता हूँ, मैं आप जवान आदमियों को देखकर कई बार बहुत खुश होता हूँ।

पुरुष—नहीं साहब, आप मुझे देखिए, मेरी पहली पत्नी थी। कम्बख्त को हमेशा मुझसे शिकायत रही, लेकिन उसकी बीमारी में जब प्रतिक्षण उसके सिरहाने रहा तो मेरा नाम रटती हुई मरी। अब यह मेरी दूसरी पत्नी है। हमारे बच्चे नहीं, यानी इस पत्नी के। हम लोग क्लबों में साथ-साथ नहीं जाते, हफ्ते में एक बार सिनेमा देखते हैं, पहाड़-जंगल जाने का मेरे पास वक्त नहीं, पर हम लोग बेहद खुश हैं। कभी हम मे कोई भेद-भाव हुआ ही नहीं। मैं कहना चाहता था कि दोनों ने अपनी-अपनी जगह को समझ लिया है और वहाँ हम लोग अडिग हैं। वह बीमार पडती है, मैं डाक्टर से घर नहीं भर देता; मैं बीमार पडता हूँ, वह रोती-धोती नहीं। मैं क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ, इस वक्त मेरी पत्नी स्टेशन के बुकस्टाल पर कौनसी किताब देख रही है। मैं जानता हूँ, वह स्टेशन पर गाडी से दस मिनट पहले पहुँच जाती है।

युवक—पर मान लीजिए, मशीन का एक पुरजा बिगड जाए।

पुरुष—[हँसता हुआ] तो पुरजा बदल डालिए, स्वयं बदल आइए। किताबें ? मैं आपको बताऊँगा, किताबें क्या हैं ! मैंने रूई के व्यापार पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। वही सब बातें लिखीं जो लोग रोज सोचते थे और जिनकी चर्चा करते थे। नतीजा यह हुआ कि किताब की धूम मच गयी, पर उन्हीं उसूलों को जिनकी मैंने वकालत की, काम मे लाने की बात मैं स्वप्न मे भी नहीं सोचता।

[पुरुष सहसा यह आशा करके कि युवक कुछ कहेगा, चुप हो जाता है। युवक सिर झुकाए हुए खामोश है। कुत्ता इतना शोरगुल सुनकर पास आकर खड़ा हो गया है। कुछ देर के लिए खामोशी हो जाती है।]

युवक—[सिर उठाकर] फैक्टरी, पुरजा, वाकई यह खूब रही ! [पुरुष कुछ कहने के लिए तैयार होता है, पर सहसा फाटक खटकता है और कुत्ता भौंकते हुए दौड़ता है। वह कुत्ते को बुलाता है और बरामदे के किनारे खड़े होकर जोर से पुकारता है। एक चपरासी हाथ में बाइसिकिल थामे आता है और सलाम करके जेब में से एक लिफाफा निकालकर देता है और फिर सलाम करके खड़ा हो जाता है।]

पुरुष—क्या है, तुम कौन हो ? [लिफाफा लेकर अपनी घड़ी के बेन के

भाड़ू से खोलता है—रोशनी की तरफ जाता है।] एँ !

चपरासी—मैं निहाल साहब का ड्राइवर हूँ, मेम साहब ने कहलाया है, वह कल आएँगी !

पुरुष—[खत पढ़ना छोड़कर] कल आएँगी ? एँ ! मुझे क्या मालूम ?

चपरासी—सब मेम साहब वहीं रहेंगे, मोटर वापस कर दी, मुझसे कहा......

पुरुष—[टहलते हुए उतावली में] और खाना, मकान...और कार मेरी मिलखीराम के पम्प पर खड़ी है !

चपरासी—हुजूर, आपका कुत्ता बड़ा पानीदार है। अंग्रेजी है ?

पुरुष—[हताश भाव से] आखिर, आखिर, हूँ......

युवक—[उठते हुए] आइए, मेरे होटल में आइए, आपकी फैक्टरी में तो आज स्ट्राइक हो गयी !

पुरुष—मैं कहता हूँ, मेरी कार मिलखीराम के पम्प पर खड़ी है।

[फिर खत बत्ती के नीचे ले जाकर पढ़ता है।]

[परदा गिरता है।]

मैं और केवल मैं

भगवतीचरण वर्मा

पात्र

टॉमसन	:	अफसर
रामेश्वर, कृष्णचन्द्र,		
परमानन्द, बेनीशंकर,		
देवनारायण, श्यामलाल,		
लता आदि	:	आफिस के कर्मचारी
मंहगू	:	चपरासी

[एक बड़े दफ्तर का आराम का कमरा। सामने वाली दीवार से मिली हुई दो आलमारियाँ रखी हैं जिनमें किताबें हैं। दोनों आलमारियों के बीच एक खिड़की है। खिड़की के ऊपर एक घड़ी लगी है, जिसमें एक बज रहा है।

दाहिनी ओर एक दरवाजा है और उसके अगल-बगल दो खिड़कियाँ हैं। बायीं ओर दो दरवाजे हैं। कमरे के बीचोबीच एक लम्बी मेज पड़ी है, जिसके चारों ओर कुर्सियाँ रखी हुई हैं। दो-एक आराम-कुर्सियाँ भी इधर-उधर पड़ी हैं।

रामेश्वर बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। उसका सर झुका हुआ है, मानो वह किसी गहरे विचार में मग्न हो।

कृष्णचन्द्र दरवाजे से कहता है—]

कृष्णचन्द्र—कहो जी रामेश्वर, क्या हाल है ?

[रामेश्वर कोई जवाब नहीं देता। कृष्णचन्द्र उसके पास आता है और कुर्सी पर बैठ जाता है। जेब से सिगरेट-केस निकालकर एक सिगरेट सुलगाता हुआ।]

कृष्णचन्द्र—क्यों जी, क्या बात है, आज बड़े सुम्न दीख रहे हो ?

रामेश्वर—हाँ, बीवी की तबीयत बहुत ज्यादा गिर गयी, डाक्टरों ने जवाब दे दिया और आज सुबह से मेरी तबीयत भी कुछ भारी है।

कृष्णचन्द्र—अरे भाई, यह तो बुरी खबर सुनायी और सुना—खबर

कृष्णचन्द्र—तो रामेश्वर सुना न! इस वक्त मौका है और अगर अब चूके तो सब खत्म हो जायगा। जानते हो, सभा तुम्हें निकलवाने पर तुला हुआ है?

रामेश्वर—होगा! लेकिन मैं क्यों कोई ऐसा काम करूँ, दूसरे का अनिष्ट मुझसे न होगा। हाँ कृष्णचन्द्र, बतलाया नहीं, कल सुबह ले चलोगे, मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ?

कृष्णचन्द्र—अरे यार आ जाना। [बेनीशंकर से] परमानन्द ही इस मौके का फायदा उठा सकता है।

बेनीशंकर—हाँ यार, ठीक कहा। चलो उसके यहाँ चलें।

[कृष्णचन्द्र और बेनीशंकर उठकर जाते हैं।]

रामेश्वर—[कृष्णचन्द्र से] अच्छा तो कृष्णचन्द्र, कल सुबह सात बजे मैं······

[कृष्णचन्द्र और बेनीशंकर कमरे से बाहर चले जाते हैं।]

देवनारायण—[मुस्कराता हुआ] चले गये—बिना तुम्हारी बात सुने चले गये! यह दुनिया काफी मजेदार है। है न?

रामेश्वर—क्या कहा?

देवनारायण—[दरवाजे की तरफ देखता हुआ] और दुनिया ठीक ही करती है। तुम्हारी बात को सुनने वाला कौन है? फिर तुम्हारी बात दुनिया में कोई सुने ही क्यों?

रामेश्वर—देवनारायण! हृदय की पीड़ा को प्रकट करना क्या कोई पाप है?

देवनारायण—हाँ, है। तुममें और तुम्हारी पीड़ा में किसी को कोई दिलचस्पी नहीं। जब तक दूसरे से उसके हित की बात करते हो, वह तुमसे मिलकर प्रसन्न होगा, तुम्हारे साथ हँसे-बोलेगा और जहाँ तुम उससे अपने सुख-दुख की बात करने लगते हो, उसका जी ऊब जाता है। तुम्हारे सुख से उसे कोई मतलब नहीं, तुम्हारे दुख की उसे परवाह नहीं।

रामेश्वर—देवनारायण, तुम क्या कह रहे हो? दुनिया में मानवता नाम की भी कोई चीज है।

देवनारायण—मानवता! हा हा-हा! जिसे तुम मानवता कहते हो

वह ढकोसला है, छल है। जो मानवता है, वह बड़ी कुरूप चीज है रामेश्वर ! मानवता के माने है एक-दूसरे को खा जाना; मानवता के माने हैं स्वयं सुखी बनने के लिए दूसरे को दुखी बनाना। विजय—दूसरो पर विजय, दूसरों की गुलामी—यही मानवता है।

[रामेश्वर एक ठंडी सांस लेकर देवनारायण की ओर देखता है।]

रामेश्वर—तुम जो कुछ कह रहे हो वह मेरी समझ में नही आ रहा है। देवनारायण, जानते हो—घर मे पत्नी मरणासन्न पड़ी है और अबोध बच्चा बिना ममता के, प्यार के, धूल मे फिसल रहा है, और मैं निराश टूटा हुआ यहाँ बैठा हूँ। देवनारायण, क्या करूँ ?

देवनारायण—मैं क्या बताऊँ ? यह बला तुम्हारी है, तुम्ही भुगतो; और उफ मत करो। आखिर अपनी मुसीबतों का बयान करने से तुम्हे क्या मिल जायगा ? सहायता ? नही, दुनिया मे कोई नहीं है, जिसके ऊपर मुसीबतें न हो और जो सहायता न चाहता हो। सहानुभूति ? वह निरी मौखिक वस्तु है—बिलकुल धोखे की चीज है। सिवा इसके कि तुम लोगों के हृदय पर एक भार बनो—बसत ऋतु को तुषार की तरह झुलस दो, हँसी की दुनिया मे एक कर्कश चीख की तरह उठ पड़ो—तुम्हारा दूसरो से अपने दुःख को कहना कोई अर्थ नही रखता ! समझे ! अब मैं चला !

[देवनारायण उठकर चल देता है। रामेश्वर देवनारायण को जाते हुए देखता है—उसके माथे पर बल पड़ जाते हैं।]

रामेश्वर—हूँ, इतनी खुदी, इतनी उपेक्षा !

[कृष्णचन्द्र, बेनीशंकर और परमानन्द का प्रवेश]

बेनीशंकर—[रामेश्वर से] क्यो जी रामेश्वर, देवनारायण कहाँ गये ?

[रामेश्वर कोई उत्तर नहीं देता। सब लोग बैठ जाते हैं। परमानन्द रामेश्वर को गौर से देखता है।]

परमानन्द—अरे रामेश्वर, क्या मामला है ? तुम्हारी आँखो में आँसू भरे हैं !

बेनीशंकर—अरे क्या लड़कियों की तरह रो रहे हो ! वीर बनो !

कृष्णचन्द्र—देखा, परमानन्द तैयार है, इस सभा का समय गया, अब बन नहीं सकता। हाँ परमानन्द, मिस्टर टॉमसन अब तक लौटकर आये होंगे। यही वक्त ठीक होगा।

परमानन्द—भाई रामेश्वर को क्यों नहीं राजी करते—रामेश्वर अगर केवल एक दफे तुम मिस्टर टॉमसन से मिल लेते, केवल दफे, तो सब काम बन जाता!

रामेश्वर—कौन काम?

परमानन्द—यही सभा वाला। आज ही सब फैसला हो जाता।

रामेश्वर—मुझे क्षमा करो परमानन्द! मैं सभा के खिलाफ काम न करूँगा। सभा के खिलाफ ही क्यों—किसी के खिलाफ नहीं।

बेनीशंकर—हाँ जनाब! सभा साहब की नजर में चढ़ना चा हैं। क्यों यहाँ यह ढोंग कब तक चलेगा?

रामेश्वर—[कड़ी आवाज में] क्या कहा?

कृष्णचन्द्र—[बेनीशंकर से] चलो जी, इनकी तबीयत ठीक है। हम लोग चलते हैं। हाँ, देवनारायण को साथ ले लेना चाहिए वह है कहाँ?

[सब लोग जाते हैं]

रामेश्वर—ये लोग दूसरे को मिटाने पर तुले हुए हैं, आखिर क्यों

[महँगू चपरासी का प्रवेश]

महँगू—सरकार, डाक मेज पर रखी है। [रामेश्वर की ओर देखता है।] अरे सरकार, आज बहुत उदास हैं, तबीयत तो ठीक है

रामेश्वर—नहीं महँगू, आज न जाने कैसा लग रहा है।

महँगू—सरकार घर चलें। छुट्टी ले लें। मैं भी चल रहा हूँ मालकिन की कैसी हालत है?

रामेश्वर—क्या बतलाऊँ महँगू! डाक्टर कहता है कि दो-एक दि की मेहमान हैं।

[महँगू की आँखों में आँसू आ जाते हैं]

महँगू—सरकार, भगवान पर विश्वास रखें। जो कुछ भाग्य में है

[देवनारायण का प्रवेश। वह मुस्करा रहा है। वह आकर रामेश्वर को बगल में बैठ जाता है।]

देवनारायण—सुना, परमानन्द को टॉमसन ने अभी-अभी डिसमिस कर दिया!

रामेश्वर—[चौंककर] क्या कहा? यह क्यों?

देवनारायण—परमानन्द ने जब खन्ना की शिकायत की तो साहब बजाय इसके कि खन्ना के खिलाफ कोई कार्रवाई करते, उन्होंने परमानन्द को ही डिसमिस कर दिया।

[रामेश्वर उठ खड़े होते हैं]

रामेश्वर—मैं अभी टॉमसन के पास जाता हूँ। परमानन्द के छह बच्चे हैं, बुढ़िया माँ है, बीवी है, ये सब भूखों मरेंगे।

[रामेश्वर दो कदम बढ़ता है, उसी समय देवनारायण उसका हाथ पकड़ लेता है।]

देवनारायण—बेवकूफी मत करो। क्यों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो? खन्ना के खिलाफ कोई बात नहीं सुनी जायगी, यह हम सब जानते हैं। परमानन्द ने वहाँ जाकर गलती की और अपनी गलती का नतीजा वह भोगेगा।

[श्यामलाल का प्रवेश]

रामेश्वर—[श्यामलाल को देखकर] अरे श्यामलाल!

श्यामलाल—आपको ढूँढ रहा था। आ''

रामेश्वर—क्या हुआ, कहो घर में तो सब ठीक हैं?

श्यामलाल—मो'''मोहन दो-मंजिले से गिर पड़ा और गिरते ही उसके प्राण निकल गये। बहूजी ने जब सुना, तब वे ज़ोर लगाकर उठीं—और वैसे ही लुढ़क पड़ीं। चलिए।

[रामेश्वर कुरसी पर गिर पड़ता है।]

रामेश्वर—हूँ! तो सब समाप्त हो गया?

[शून्य दृष्टि से अपने चारों ओर देखता है।]

[मिस्टर टॉमसन के साथ मिस्टर खन्ना का प्रवेश।]

खन्ना—मिस्टर रामेश्वर! मैंने आपको फाइल दी थी, उस पर अभी

तक कोई कार्रवाई नहीं की । क्यों ?

टॉमसन—मिस्टर रामेश्वर, मिस्टर खन्ना ने आपकी कई शिकायें की हैं । मैं आपसे आशा नहीं करता कि आप इतनी लापरवाही करेंगे इसलिए, उस फाइल पर कार्रवाई करके मेरे पास भेज दीजिए ।

[खन्ना और टॉमसन चलने लगते हैं—रामेश्वर खड़ा हो जाता है

रामेश्वर—मिस्टर टॉमसन ! एक बात मैं पूछना चाहता हूँ ।

[टॉमसन और खन्ना रुक जाते हैं—दोनों आश्चर्य से रामेश्वर को देखते हैं ।]

रामेश्वर—आपने परमानन्द को डिसमिस किया ?

खन्ना—तुम पूछने वाले कौन हो ?

रामेश्वर—[खन्ना से] तुम चुप रहो ! मैं तुमसे नहीं पूछ रहा हूँ । [टॉमसन से] आप जानते हैं कि उसकी लम्बी गृहस्थी है और वही अकेला कमाने वाला है । उसकी बर्खास्तगी के माने हैं दस प्राणियों का भूखों मरना ।

टॉमसन—मुझे दुःख है रामेश्वर, लेकिन मुझे खन्ना और परमानन्द के बीच में एक को रखना था और एक को अलग करना था ।

रामेश्वर—और आपने एक शैतान को अपने साथ रखा, एक मनुष्य को अलग कर दिया ।

खन्ना—और अब मिस्टर टॉमसन को मेरे और तुम्हारे बीच में एक को अलग करना पड़ेगा और एक को रखना पड़ेगा । जो आदमी एक अफसर का अपमान करता है, वह दूसरे का भी अपमान कर सकता है, मिस्टर टॉमसन यह अच्छी तरह जानते हैं ।

टॉमसन—मिस्टर रामेश्वर, मुझे दुःख है कि आप आज इस तरह गैरजिम्मेदारी की बातें कर रहे हैं । कर्तव्य का स्थान भावना से ऊपर है ।

[रामेश्वर बढ़कर खन्ना का गला पकड़ लेता है और दबाने लगता है ।]

रामेश्वर—कर्तव्य का स्थान भावना से ऊपर है—नहीं कर्तव्य ही सबसे ऊँची भावना है ! खन्ना, तुम बचोगे नहीं ।

[खन्ना आँखें फाड़ देता है । सब लोग रामेश्वर को छुड़ाते हैं, लेकिन रामेश्वर में अमानुषिक बल आ गया है । धीरे-धीरे रामेश्वर खन्ना का

गला छोड़ देता है—लखा निर्जीव जमीन पर गिर पड़ता है।]

टॉमसन—यह क्या ! यह क्या !

रामेश्वर—मिस्टर टॉमसन ! अभी-अभी मेरा लड़का और मेरी पत्नी मर चुके हैं। [श्यामलाल की ओर इशारा करता हुआ] इनसे पूछ लीजिए। और लखा—यह मनुष्य जानता था, आज सुबह ही मैंने इससे कहा था। अपनी खुदी में भूला हुआ आदमी ! [रामेश्वर कुरसी पर बैठ जाता है] दूसरों को सताने वाला, नष्ट करने वाला [कुछ ठहरकर] हाँ, अब आप पुलिस बुला सकते हैं।

[रामेश्वर का सिर लुढ़क जाता है—सब लोग दौड़ते हैं। देवनारायण रामेश्वर की नब्ज देखता है और सिर हिलाता है।]

विभाजन

विष्णु प्रभाकर

पात्र

प्रभुदयाल : बड़ा भाई
देवराज : छोटा भाई
भगवती : प्रभुदयाल की पत्नी, देवराज की भाभी
शारदा : देवराज की पत्नी
महेश, रमेश : प्रभुदयाल के लड़के
नीला : प्रभुदयाल की लड़की

पहला दृश्य

समय—रात के ९ बजे।

स्थान—एक साधारण कस्बा।

[कस्बे के मुहल्ले में एक घर का आँगन। रात काफ़ी अंधेरी है। आँगन के पार एक कमरे में लालटेन टिमटिमा रही है। उसी का प्रकाश आँगन में फैला है। उसी प्रकाश में एक स्त्री चूल्हे के आगे बैठी है। यह भगवती है, साधारण कपड़े पहने है। सरदी है, इसीलिए आग ताप रही है। चूल्हे पर दूध पक रहा है कि अन्दर से बालक के रोने की आवाज़ आती है। उठकर अन्दर जाती है। क्षण भर सन्नाटा छाया रहता है, फिर धीरे-धीरे एक मीठा स्वर वहाँ आकर फैलता है। भगवती लोरी गुनाकर बच्चे को सुलाती है।]

भगवती—परियों के देश से आ जा री निंदिया।
नीला को आकर सुला जा री निंदिया॥
ऊपर है तारों का संसार, नीचे मेरे मन का प्यार,
चन्दा मामा ऊपर तेरे, नीचे प्राण मग्न हैं मेरे।
पलकों में आके समा जा री निंदिया।
नीला को आके सुला जा री निंदिया॥

[तभी दरवाज़े पर खटखट होती है, कोई पुकारता है।]

अधिकार था। अब अलग-अलग है, तेरे दो सौ रुपयो पर मेरा कोई अधिकार नही है। यह व्यवहार की सीधी बात है। नाते-रिश्ते का इसमे कोई सम्बन्ध नही है।

देवराज—परन्तु भाभी ! मेरी आमदनी पर तुम्हारा अधिकार नही है, महेश का तो है। मैं उसी को देता हूँ, तुम्हे नही······

भगवती—देवराज ! जब तक हम हैं उसके पालन-पोषण का कर्तव्य हमारा है। जब हम नहीं रहेंगे, तब तेरे देने की बात उठ सकती है। [गर्व से] व्यर्थ ही भुनना क्या ठीक है ? जब बहुत थे तब बहुत खर्च करके सिर ऊँचा रखा। अब कम हैं तो हम किसी से माँगेंगे नही। ना, तेरी भाभी जीते-जी कभी ऐसा नही करेगी। देख, फिर कहती हूँ तू देगा तो लौटाने की बात उठेगी। उतनी शक्ति हम मे नही है। न जाने कल को क्या हो, भाई-भाई मे जो मोहब्बत है वह भी खोनी पडे। उस समय दुनिया हँसेगी। इसीलिए कहती हूँ, तू लेने-देने की बात मत कर। और सुन, जब हम नही रहेंगे तब तू ही तो करेगा। [क्षण भर रुककर] जा, घर पर बहू अकेली होगी। कितना अँधेरा है बाहर।

देवराज—भाभी !

भगवती—हाँ भइया !

देवराज—तो जाऊँ ?

भगवती—और कैसे कहूँ ?

देवराज—मैंने यह नही सोचा था, भाभी !

भगवती—देव ! तू जानता है जब मैं इस घर मे आयी थी, तो तू कितना बड़ा था ? सात वर्ष का होगा। मैंने ही पाल-पोसकर इतना बडा किया है। उस प्रेम को कोई मिटा सकता है ? उसी प्रेम को अक्षुण्ण रखने को कहती हूँ, देवराज ! तू भाभी के साथ व्यवहार के चक्कर मे न पड।

देवराज—भाभी-ई-ई-ई······

भगवती—जा, रात बढी आ रही है। इतने बड़े घर मे बहू अकेली होगी।

[देवराज की आँखें भर-भर बहती हैं। वह बेबस-सा उठता है और

बिना बोले एकदम बाहर निकल जाता है। भगवती किवाड़ बन्द कर लेती है। उसकी आँखों में आँसू छलक आये हैं, पर चेहरे पर अद्भुत मुस्कराहट है, जो धीरे-धीरे हँसी में पलट जाती है।]

भगवती—[हँसती-हँसती] पगला! दो नाव में पैर रखना चाहता है।

[भगवती फिर उसी तरह चूल्हे के पास आकर बैठ जाती है। कोयले बुझ चले हैं, उन्हें दहकाने लगती है। फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

समय—लगभग १० बजे रात।

स्थान—बाजार में ठाकुरजी का मन्दिर।

[मन्दिर में ठाकुरजी की सजी प्रतिमा के सामने पूजा हो रही है। कुछ भक्त-जन घण्टे-घड़ियाल बजा रहे हैं। कुछ दोनों हाथ जोड़े ध्यानावस्था में खड़े हैं। मूर्ति के ठीक सामने एक थाल में कुछ पैसे पड़े हैं। दूसरी तरफ चौकी पर एक तश्तरी में मिष्ठान्न और एक लोटे में चरणामृत है। पुजारी जी जोर-जोर से पुकार रहे हैं।]

पुजारी—[ध्यान लगाये हुए।]

ओ३म! ओ३म्! ओ३म्! ओ३म्!

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।

त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।

त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

ओ३म् हरि, ओ३म् हरि, ओ३म् हरि, ओ३म् हरि।

[कुछ भक्त जाते हैं, कुछ और आते हैं। आने वाले पुजारी को प्रणाम कर चुपचाप हाथ फैला देते हैं। पुजारी एक चम्मच से चरणामृत तथा मिष्टान्न का एक टुकड़ा उनके फैले हुए हाथ पर रख देता है। श्रद्धा से झुककर वे चले जाते हैं। वहीं दूर दस का घण्टा बजता है। पुजारी उठता

है। आरती उठाकर घण्टी हिलाता है। कुछ क्षण तक सब मिलकर गाते हैं, 'आरती श्री ठाकुरजी की' और फिर सब स्वर एकदम समाप्त हो जाते हैं। पुजारी भक्तों को अन्तिम प्रसाद देने के लिए आगे बढ़ता है। इसी समय देवराज वहाँ आता है, सबको देखता है।]

देवराज—पुजारीजी, पालागन।

पुजारी—जीते रहो, सुखी रहो देवराज! कैसे आये इस वक्त?

देवराज—भइया को देख रहा था। गये क्या?

पुजारी—वे अभी गये हैं। कहते थे आज जी कुछ उदास है। सत्संग में नहीं बैठे। हाँ, पूजा समाप्त कर गये हैं। नियम के बड़े पक्के हैं। [हँसता है]

देवराज—हाँ, पुजारजी! भइया ने जीवन मे एक ही बात सीखी है और वह है नियम! नियम से परे उनके लिए कुछ भी नहीं है।

पुजारी—देवराज! मैं कहता हूँ, प्रभुदयाल क्या इस दुनिया के आदमी हैं! नहीं, वह तो देवता हैं। परन्तु [आहिस्ते से] जब से उस घर मे आये हैं उदास रहते हैं···।

देवराज—[चौंककर] हाँ···[सम्हलकर] इस बार जब कथा हुई थी, आप नहीं आये थे।

पुजारी—[नम्र स्वर में] हाँ भइया, इस बार मैं नहीं आ सका था। कश्मीर चला गया था। बड़ा दुःख रहा प्रभुदयाल के घर कथा हो और मैं न रहूँ।

देवराज—लेकिन! पुजारीजी, आप हों या न हों, हम आपको भूला नहीं सकते। आपके दक्षिणा के बीस रुपये मैं ले आया हूँ। [देता है]

पुजारी—[बेहद नम्र होकर] हैं, हैं, हैं, ! देवराज! मैं कहता हूँ तुम दोनों भाई दिव्य हो। तुम्हारे ऐसे जन बिरले हैं। परमात्मा तुम्हें सदा सुखी रखें। आनन्द···

देवराज—[मुस्कराता है] और पुजारीजी एक बात न भूलिएगा।

पुजारी—[मुस्कराता है] क्या?

देवराज—इस बार भगवती देवी का जाप करना है।

पुजारी—जरूर, जरूर, यह तो मैं हमेशा करता हूँ।

देवराज—और यशपाल भइया होंगे ।

पुजारी—जानता हूँ देवराज ! वे बड़े हैं ।

देवराज—जी ! अच्छा पालागन महाराज !

पुजारी—युग-युग जीओ, सुखी रहो !

[देवराज बाहर जाता है । पुजारी फिर प्रसाद बाँटने लगता है, भक्तजन आपस में बातें करते हैं ।]

एक आदमी—देखा इस देवराज को ! अब जरा दो पैसे कमाने लायक हुआ तो भइया को अलग कर दिया !

दूसरा आदमी—हाँ भइया ! प्रभुदयाल की बहू ने पेट का समझकर पाला था । माँ तो जरा-से को छोड़कर मर गयी थी । उसके जी पर क्या बीतती होगी ?

तीसरा आदमी—तुम नहीं जानते, बड़ी तेज औरत है । देवराज ने केवल एक बार कहा था, भाभी इस रोज-रोज की खट-खट से तो अलग चूल्हा बना लेना अच्छा है । बस, उसने दो चूल्हे करके दम लिया । प्रभुदयाल तो सीधा-सादा आदमी है ।

चौथा आदमी—अजी घर-घर यही मिट्टी के चूल्हे हैं । बँटना क्या बुरा हुआ । प्रभुदयाल का खर्च भी तो ज्यादा है ।

पहला आदमी—अजी खर्च ज्यादा है तो क्या प्रेम को भुलाया जा सकता है । आखिर उन्होंने ही तो इस योग्य बनाया है । बेटे भी इस तरह करने लगें तो—

दूसरा आदमी—भइया ! बेटे और भाई में विशेष अन्तर होता है ।

तीसरा आदमी—अजी ! भाई और बेटे में कोई अन्तर नहीं है । अन्तर तो ये सब औरतें करवा देती हैं । बेटे की बहू आने पर घर में रोज तूफान मचा रहता है और सब तो भइया के विवाह होते ही अलग हो जाते हैं ।

[सब हँस पड़ते हैं और इसी तरह बातें करते-करते बाहर चले जाते हैं । पुजारी भी तब तक सब दीप बुझा चुकता है । केवल एक दीया ठाकुर जी के पास मन्द-मन्द प्रकाश फेंकता है । पुजारी ठाकुरजी को प्रणाम

करता है और किवाड़ बन्द कर देता है। बाहर जाता है। अन्धकार के साथ-साथ गहरी निस्तब्धता वहाँ छा जाती है।]

[पट परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

समय—प्रातः ८-९ बजे।

स्थान—प्रभुदयाल का घर।

[प्रभुदयाल पूजा करके दूकान पर जाने का बन्दोबस्त कर रहे हैं। छोटा लड़का रमेश आंगन में बैठा तकली कात रहा है। नीला चौखट पर बैठी रोटी खा रही है। आंगन मे सफाई है। कमरा भी साफ नजर आ रहा है। चूल्हे से धुआं उठता है और ऊपर आसमान में काले धुंधले बादल बन रहे हैं। वातावरण में एक गूंज-सी भरी है। तभी बाहर से भगवती हाथ मे एक चिट्ठी लिये आती है और प्रभुदयाल के पास खड़ी हो जाती है।]

प्रभुदयाल—[देखकर] किसकी चिट्ठी है ?

भगवती—महेश की।

प्रभुदयाल—[मुस्कराकर] क्या लिखा है उसने ?

भगवती—वही लिखा है जो हमेशा लिखता है, कैसे भी हो रुपये का प्रबन्ध कर ही दें। अपने दर्जे मे अव्वल आया है।

प्रभुदयाल—[जाकेट के बटन लगाते-लगाते] अव्वल तो हमेशा ही आता है, परन्तु रुड़की जाने के लिए कम से कम १००) महीने का खर्च है।

भगवती—वह तो मैं जानती हूँ, परन्तु रुपये नहीं मिलेंगे, इसी कारण लड़के का भविष्य नहीं बिगाड़ा जा सकता।

[क्षणिक सन्नाटा]

भगवती—मैं तो समझती हूँ कि रात को जो कुछ मैंने कहा था, वह ठीक रहेगा।

प्रभुदयाल—[सोचता है] तुम तो बस······

भगवती—जानती हूँ दुकान गिरवी रखने की बात से आपको ... होता है, अगर मेरे पास इतने गहने होते, जिनसे उसका काम चल ... तो मैं कभी यह बात नहीं कहती। १०००) रुपये से एक साल का ... भी नहीं चलेगा। बात तीन साल की है।

प्रभुदयाल—कुछ भी हो, मैं बाप-दादा की सम्पत्ति नहीं बेच सकत... गिरवी रखकर छुड़ाने की आशा नहीं रहती और फिर दुकान की वजह ... साख बँधी है। एक बार गयी तो पेट भरना मुश्किल हो जाएगा।

भगवती—यह सब मैं जानती हूँ, परन्तु पूछती हूँ, दुकान की मम... क्या लड़के की ममता से ज्यादा है?

[प्रभुदयाल बोलते नहीं, केवल शून्य में ताकते हैं।]

भगवती—[सहसा याद करके] एक बात कहूँ?

प्रभुदयाल—क्या?

भगवती—मैं देवराज को बुलाती हूँ।

प्रभुदयाल—क्यों? क्या उससे रुपया माँगोगी?

भगवती—सुनो तो। आप उससे कहना कि वह आपकी दुका... गिरवी रख ले!

प्रभुदयाल—[सोचकर] वह रख ले!

भगवती—जी हाँ। इस तरह बाप-दादे की सम्पत्ति बेचनी भी नहीं पड़ेगी और काम भी बन जाएगा।

प्रभुदयाल—बात तो तुम्हारी ठीक है।

भगवती—तो बुला लूँ उसे? फिर तो वह तो दिसावर चला जाएगा।

प्रभुदयाल—बुला लो।

भगवती—[पुकारती है] रमेश! ओ रमेश! भइया, जा तो अपने चाचा को बुला ला। कहना भाभी बुला रही है।

रमेश—[दूर से] जाता हूँ, माँजी।

[कुछ क्षण वहाँ सन्नाटा रहता है। भगवती चूल्हे को तेज करती है कि रमेश और देवराज वहाँ आते हैं।]

भगवती—अरे क्या इधर ही आ रहा था?

रमेश—हाँ, माँजी, चाचा तो यहीं आ रहे थे।

देवराज—क्या बात है भाभी ? सुना है महेश रुड़की जाना चाहता है। बड़ी सुन्दर बात है।

भगवती—हाँ, कई दिन से यही बात सोच रहे हैं।

देवराज—कुल तीन साल की बात है। भगवान की कृपा से हमारे कुटुम्ब में भी एक अफसर बनेगा। महेश है भी होशियार।

भगवती—यह तो सब ठीक है देवराज ! पर बात रुपयों पर आकर अटक गयी है।

देवराज—क्या सोचा फिर ?

प्रभुदयाल—[खाँसते-खाँसते] उसी के लिए तो बुलाया है।

देवराज—जी !

प्रभुदयाल—[एकदम] मैं कहता हूं कि तू मेरी दुकान ले ले···।

देवराज—[चौंककर] मैं···

प्रभुदयाल—हाँ, तीन हजार रुपये की जरूरत है।

देवराज—भइया !

प्रभुदयाल—मैं धीरे-धीरे सब चुकता कर दूंगा।

देवराज—[दबता स्वर] लेकिन भइया, आप मुझसे यह कह रहे हैं...?

प्रभुदयाल—हाँ···

देवराज—आपकी दुकान मैं गिरवी रख लूं ?

प्रभुदयाल—हाँ···

भगवती—इसमें बात ही क्या है। तेरे भइया नहीं चाहते कि दुकान किसी दूसरे के पास रहे। अगर छुड़ा भी नहीं सके तो अपने ही घर रहेगी।

देवराज—[साँस लेकर] ठीक कहती हो भाभी ! व्यवहार-कुशल आदमी दूर की बात सोचता है परन्तु बहुधा वह अपने अन्दर की मनुष्यता भूल जाता है।

भगवती—[चौंकती है] क्या कहता है तू ?

देवराज—व्यवहार की बात है भाभी ! सोचूंगा ! [हँसता है]

भगवती—[बरबस हँसती है] हाँ, हाँ, सोच लेना और जवाब दे

देना। आखिर महेश के लिए कुछ करना ही होगा। कल को दुनिया कहेगी माँ-बाप ने पैतृक सम्पत्ति के मोह में पड़कर सन्तान का गला घोंट दिया। वह उचित नहीं होगा।

देवराज—नहीं भाभी ! उसे जरूर रुड़की भेजो। [उठता है] अच्छा, मैं जाता हूँ, साँझ को आऊँगा।

[देवराज जाता है। प्रभुदयाल भी अनमने से उठते हैं।]

भगवती—डरती हूँ मना न कर दे।

प्रभुदयाल—जो कुछ होना है वह तो होगा ही।

[वे भी लकड़ी उठाकर बाहर चले जाते हैं। भगवती अकेली आँगन में बैठी सोचती है। आँखों में आँसू भर आते हैं। उन्हें पोंछती नहीं]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

समय—दोपहर के लगभग ११॥ बजे।

स्थान—देवराज का घर।

[देवराज का घर काफी सुन्दर और सजा हुआ है परन्तु अब खाली नजर आता है। केवल आँगन के पास दालान में सामान अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ा है। कुछ बक्स हैं, होलडाल है, सूटकेस है। देवराज की पत्नी शारदा अन्दर से ला-लाकर सामान वहाँ रख रही है। रसोईघर से धुआँ आ रहा है। बाहर से स्त्रियाँ आती हैं। दो-चार मिनट बात करके चली जाती हैं।]

स्त्री—[आकर] बहू !

शारदा—जी।

स्त्री—कब तक लौटेगी ?

शारदा—जी, कह नहीं सकती। बर्ष दो बर्ष का काम है। बीच-बीच में शायद कुछ दिन के लिए आ सकूँ।

स्त्री—हाँ बहू, जो परदेश में कमाने जाते हैं घर उन्हें भूल जाता है।

[उसी समय देवराज वहाँ आता है, स्त्रियाँ बाहर जाती हैं।]

देवराज—शारदा ! अभी निबटी नहीं ! भाभी के पास भी चलना है ।

शारदा—[उठकर पास आती है] अभी चलूंगी, पर आपने कुछ सुना भी है ।

देवराज—क्या ?

शारदा—जीजी ने अपना जेवर बेच दिया ।

देवराज—जानता हूँ शारदा ! भाभी महेश को लड़की कालेज भेजना चाहती हैं । जेवर इसी दिन के लिए बनता है ।

शारदा—और आपके भाई साहब ने दुकान उठाने का निश्चय कर लिया है ।

देवराज—[चौंकता है] यह किसने कहा तुमसे ?

शारदा—अभी-अभी रामकिशोर की बहू कह रही थी । उन्हीं के साझे में वे चमड़े की दुकान खोलेंगे ।

देवराज—अच्छा ! [अचरज]

शारदा—और रूई का व्यापार भी करेंगे ।

देवराज—[हतप्रभ-सा] भइया रूई का व्यापार करेंगे ?

शारदा—जी हाँ अब वे सब रुपया कमाना चाहते हैं ।

देवराज—[म्लान होता है] सचमुच ?

शारदा—और नहीं तो ये सब बातें क्या माने रखती हैं ?

देवराज—शायद तुम ठीक कहती हो । उन्हें रुपयों की जरूरत है । भाभी ने मुझसे भी कहा था

शारदा—[अचरज से क्या कहा था ?

देवराज—मैं भइया की दुकान गिरवी रखकर उन्हें ३०००) दे दूं ।

शारदा—[उत्सुकता से] फिर···

देवराज—फिर क्या, मैंने मना कर दिया ।

शारदा—[सन्तोष की साँस लेकर]—आपने ठीक किया । सगे-सम्बन्धियों से लेन-देन करके कौन आफत मोल ले ।

देवराज—लेकिन भइया तो सीधे-सादे हैं, इतना काम कैसे करेंगे ?

शारदा—[मुस्कराती है] घर में जीजी तो हैं । वे सब कुछ समझती हैं । और फिर महेश की बात है । उस पर उन्हें कितनी आशाएँ हैं ।

देवराज—[एकदम उदास होता है] हाँ, शारदा। तुम ठीक कहती हो। आशा सब कुछ करा लेती…

[तभी रमेश का तेज स्वर पास आता है।]

रमेश—चाची, चाची-ई-ई……

शारदा—क्या है रमेश ?

[रमेश का प्रवेश]

रमेश—चाची, तुम जा रही हो। मैं भी चलूँगा।

शारदा—[हँसकर] चलेगा ?

रमेश—हाँ।

शारदा—जीजी से पूछा तूने ?

रमेश—पूछा था चाची! भाभी ने कहा है, जी करता है तो चला जा।

शारदा—[देवराज से] इसे ले चलो जी। अकेले जी भी नहीं लगेगा और फिर…

देवराज—तो ले चलो। लेकिन मुझे एक काम याद आ गया। जरा बाजार हो आऊँ। भाभी के पास सन्ध्या को चलेंगे।

रमेश—चाचीजी, भाभी ने कहा है, शाम को खाना वहीं खाना।

शारदा—अच्छा रे, पर अब तू मेरा काम करना, बस।

[मुस्कराती-मुस्कराती उसे पकड़कर अन्दर ले जाती है। देवराज एक बार उन्हें देखकर हँसता है, फिर उदास होकर बाहर चला जाता है। दूर कहीं घण्टा बजता है।]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

समय—सन्ध्याकाल।

स्थान—देवराज का घर।

[शारदा ने सब सामान सम्हाल लिया है। नौकर बिस्तर बाँधने में व्यस्त है और वह ट्रंक, सूटकेस गिन रही है। स्त्रियाँ अब भी आ-जा रही हैं। शारदा काफी थकी जान पड़ती है। उसका सुन्दर चेहरा उतर रहा

है। बोलती-बोलती रो उठती है। बार-बार आतुरता से बाहर झाँक लेती है। सहसा बिजली का प्रकाश चमक उठता है। तभी देवराज मन्द-मन्द गति से वहाँ आता है। हाथ में एक कागज लिये है। शारदा शीघ्रता से आगे बढ़ आती है।]

शारदा—बड़ी देर कर दी आपने, कहाँ चले गये थे? और आपके हाथ में क्या चीज है?

देवराज—[गम्भीरता से] यह भइया की दुकान का कागज है।

शारदा—[काँपकर] क्या···आ···आ?

देवराज—हाँ शारदा! मैंने भइया की दुकान गिरवी रखकर उन्हें तीन हजार रुपये दे दिये हैं।

[कागज फाड़ने लगता है]

शारदा—[हतप्रभ होकर] लेकिन इसे फाड़ क्यों रहे हैं?

देवराज—[अनसुनी करके] आग जलायी है शारदा?

शारदा—आग···! क्यों?

देवराज—बेशक आग! शारदा! सोचता हूँ मन को पागल न हो जाऊँ। इसलिए इस कागज को समूल नष्ट कर देना चाहता हूँ।

शारदा—क्या कह रहे हैं आप? तीन हजार रुपये क्या इसी तरह फेंक दिये जाएँगे?

देवराज—नहीं शारदा! भाभी को मैं जानता हूँ। उन्हीं की गोद में पलकर इतना बड़ा हुआ हूँ।

शारदा—लेकिन···

देवराज—[बीच ही में] और सुनो! होंगे तो भइया रुपये रखेंगे नहीं, यह भी जान लो कि वे देने आएँगे तो मैं लौटाऊँगा भी नहीं। ब्याज तक ले लूँगा। व्यवहार की बात है।

शारदा—[चिन्तित होकर] मैं नहीं जानती, तुम्हें क्या होता जा रहा है।

देवराज—[हँसता है] यह तो मैं भी नहीं जानता। भाभी से जब मैंने कहा कि दुकान गिरवी रखकर रुपये दे दूँगा तो वे रो पड़ीं। सच कहता हूँ शारदा, जीवन में पहली बार आज मैंने भाभी को रोते देखा है।

मैं हँसता हूँ। तुम गुस्सा करती हो, करो। परन्तु मैंने भाभी को अ
रोते देख लिया···

[कागज को जल्दी फाड़कर रसोईघर की आग में डाल देता है
उसमें आग बुझ चली है, कागज गिरने पर धुआँ उठता है।]

देवराज—सुनो शारदा ! रोने-हँसने का यह सीन यहीं समाप्त होत
है। प्रार्थना करता हूँ दुनिया इस समाप्ति को न जाने। और देखो, मैं अ
भाभी के पास नहीं जाऊँगा। तुम जा सकती हो, लेकिन रमेश के बा
में कुछ मत कहना। भाभी कहे तो ले चलना। कहीं···

[आगे वह नहीं बोल सका। धीरे-धीरे कागज के टुकड़ों को कुरेद
कुरेद कर जलाता है। शारदा क्षण-भर स्तम्भित, चकित, उन्हें देखतं
है। फिर सहसा खूँटी पर से चादर उतार लेती है।]

शारदा—लेकिन मुझे तो एक बार जीजी से मिलना ही है। एक
बार उनके चरण छूने ही हैं, नहीं तो दुनिया क्या कहेगी।

देवराज—हाँ-हाँ, तुम जाओ, शारदा ! वे तुम्हें इस बात का पता
भी नहीं लगने देंगी।

[शारदा बाहर जाती है। नौकर साथ है। वहाँ केवल देवराज रह
जाता है। वह बिजली के प्रकाश में अँगीठी की आग के बनते हुए रंगों
को देखता रहता है। धीरे-धीरे उसके मुख का रंग भी पलटता है और
आँसुओं की दो बड़ी-बड़ी बूँदें अँगीठी में गिर पड़ती हैं। एक धीमा-सा
शब्द होता है और फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

[पटाक्षेप]

संवेदना-सदन

ालिन

पात्र

कोमल : संवेदना-सदन का प्रिंसिपल। दाढ़ी-मूँछ साफ, काले घुंघराले बाल, बीचोंबीच माँग। काली पतलून, काला बूट, सफ़ेद कमीज़, लाल सुनहरा झिलमिल टाई। बाँहें लापरवाही से चढ़ी हुईं। आयु करीब ३५ वर्ष।

करुणा : संवेदना-सदन की वाइस प्रिंसिपल। कटे बाल। रेशमी साड़ी। मखमली नीले जूते। आयु करीब २५ वर्ष।

प्रो० प्राण पश्चिमी वेशभूषा। आयु ४० वर्ष। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक।

मिसेज प्राण : प्रो० प्राण की पत्नी। भारतीय सम्भ्रान्त वेशभूषा। गोरा भरा-भरा तन।

सुकुमारी : प्रो० प्राण की बहन। आयु २० के आसपास। कन्धों से ज़रा ऊपर लहराते कटे बाल। आम के पत्ते की तरह मस्तक पर पड़ी एक केशपट्टी। गोरा छरेरा बदन, अधखुली चोली, साड़ी, मखमली हरे जूते।

पुरुष : एक भारतीय कुलीन व्यक्ति। संवेदना-मण्डली का ग्राहक। धोती-कुर्ता-चप्पल—वेशभूषा।

स्त्री पुरुष की पत्नी।

राधा, माला, तारा, रानी, यामिनी : सेवा-मण्डली की सदस्या। आयु १६-१८ के बीच। नये ढंग, काले गाउन। किसी के बाल कटे, किसी का जूड़ा, किसी की दो वेणियाँ किसी की एक। कद लगभग ५ फुट।

कोमल—रोग फैलने की झिलमिल आशा, प्लेग की आकुल प्रतीक्षा, महामारी का आगमन ! अहा···अहा···मिस करुणा, न-जाने क्या-क्या होने वाला है।

करुणा—[सभीत] महामारी···प्लेग···ओह···!

कोमल—हैं···हैं···हैं···अरे, इतनी भयभीत ! यह घबराहट !

करुणा—महामारी प्लेग—सैकड़ों मौतें। घर-घर में हाहाकार ! चीत्कार की दर्दभरी पुकार !

कोमल—सैकड़ो मौतें। घर-घर में चीत्कार—हाहाकर ! तभी तो जन-सेवा का पावन अवसर मिलेगा। ऐसे भीषण काल में हम संवेदना समितियाँ भेजकर, मानम-मंडलियाँ पहुँचाकर मृतकों के आहत परिवारों को धीरज बँधायेंगे।

करुणा—ओह, यह तो मैं भूल ही गयी। सचमुच, परोपकार और मानव सेवा का अनुपम संयोग ! खूब···!

कोमल—स्वर्ण और सम्मान बटोरने की रंगीन घड़ियाँ ! डाक्टर गंजू कहता है, प्लेग की पूरी-पूरी आशा। न भी हो, तो भी सदन जैसी परम उपकारी संस्था की महान आवश्यकता तो है ही।

करुणा—सरासर। इस व्यस्त और व्यापारी जीवन में कौन किसे रोये, मरने वालों के लिए कौन नष्ट करे अपना अनमोल समय !

[नौकर का प्रवेश]

नौकर—क्लास लेंगे क्या ?

करुणा—भेज दो। [नौकर का प्रस्थान]

कोमल—हाँ, तो युग-युग से संवेदना-तृषित मानव को हम सहानुभूति की झील में डुबो देंगे। संवेदना की नदी में बहा देंगे। [पाँच लड़कियों का प्रवेश] आओ। आओ, हाँ, मैं कह रहा था, हम संसार के घायल दिल पर शीतल आलप करेंगे। रोते मनुष्य के आँसू हम अपने आँचल से पोंछ, उसे धीरज बँधायेंगे। संवेदना-सदन के सामने महान् मिशन है। तुम्हें संसार में बुद्ध की दया, ईसा की करुणा और महावीर की ममता की नदी बहा देनी है। तुम सदन के मिशन को पूरा करने वाली सैनिक—तुम प्रेम-करुणा-दया-शोक की पहरेदार ! [मेज पीटकर] और तुम्हीं सब कुछ—

[तात्पर्य] मेरा मतलब···एँ···एँ···तुम्हीं संसार के उज्ज्वल भविष्य की चौकीदार ! कल हमारी मंडली ने कितना नाम कमाया, मालूम ?

करुणा—ये सभी सहायक दल के रूप में उनके साथ थीं।

कोमल—गु···ड ! देखा, सदन की शान रख ली।

रागी—और प्रिंसिपल साहब, रत्ना तो ऐसी चीख-चीखकर रोयी, छाती पीट-पीट चिल्लायी, जैसे उसके सच्चे पिताजी ही चल बसे।

कोमल—अभिनय की कुशलता तो तभी। चाहे किसी का बाप मरे, तुम समझो तुम्हारे सगे पिताजी की मौत हो गयी। किसी के पति का स्वर्गवास हो या नरकवास, तुम अनुभव करो, तुम्हारा सुहाग लुट गया। एंड सो ऑन।

करुणा—सरासर।

धारा—वाह बहनजी, अपने पिताजी का मरना कौन चाहेगा ?

माला—कौन ऐसी नारी, जो पति के मरने की कल्पना करे ?

करुणा—हैं···हैं···अरे, कोई मर थोड़े ही जाएगा। यह तो अनुभूति जगाने के लिए—अनुभूति तीव्र नहीं, तो अभिनय क्या खाक ! शोकाकुल परिवार को धीरज क्या धूल बँधाओगी !

कोमल—समस्त संसार में हाहाकार। चारों ओर स्वार्थ का जलता रेगिस्तान, न जहाँ प्रेम की हरियाली, न संवेदना का निशान। मानव-जीवन, ओह मानव-जीवन एक बंजर मैदान। इसमें तुम्हें करुणा की धारा बहानी होगी, इसमें तुम्हें शोक-सहानुभूति की झील लहरानी होगी। और, यह तभी हो सकेगा, जब तुम्हारा हृदय इतना विशाल हो, औरों की पीड़ा तुम्हारी पीड़ा हो, दूसरों का दर्द तुम्हारा दर्द हो। गैरों के पिताओं को अपने पिता मानो, भाइयों को भाई अनुभव करो, पतियों को···एंड सो ऑन।

करुणा—इसी महान मिशन और पावन कर्तव्य को सामने रखकर तुम्हें शिक्षा दी जा रही है। इसी का ध्यान रख, तुम्हें अभिनयकला सीखनी है। जिस जाति की नारी के सामने यह पवित्र आदर्श है, वही संसार को मानवता का नवीन संदेश दे सकेगी।

माला—इसमें क्या शक ?

राधा—सोलहों आने सच।

कोमल—अनेक आशाओं-अभिलाषाओं के साथ, सैकड़ों अरमानों के साथ, तुम्हें ट्रेनिंग दे रहे हैं।

सब—बिलकुल-बिलकुल।

कोमल—तब हाँ, यदि तुम्हें किसी जवान के मातम के लिए भेजा जाये तो···एँ···एँ···एँ तुम राधा?

राधा—तो मैं [अभिनय] मैं ऐसे लचक-लचक पछाड़ खा-खाकर गिरूँ, ऐसा गगनभेदी चीत्कार करूँ कि मृतक के माँ-बाप दंग रह जाएँ, सारा मुहल्ला सन्नाटे में आ जाए।

करुणा—शाबाश! पर सदा एक ही सुर में नहीं रोना चाहिए, रोदन में एकरसता रसाभास है। कभी सिसक-सिसक, तो कभी चीख-चीख कर। मतलब यह, रोने की जितनी ही शैलियाँ होंगी, उतना ही रस आएगा, उतना ही शोक-डूबे परिवार को धीरज मिलेगा—समझी भाभियो!

शान्ति—और क्या, रोने की सैकड़ों शैलियाँ, अनेक प्रकार, अनगिनत राग-रागनियाँ हैं। कभी दर्दीले तराने, कभी शोर के गाने, कभी भैरवी और कभी विहाग के राग निकालना। मैं तो सच, बहनजी, इतनी वैरायटी आलापन करूँ कि बड़े-बड़े गवैयाचार्य भी बगलें झाँकने लगें।

कोमल—शाबाश! काम वह कमाल का हो, देखने-सुनने वाले मुग्ध हो जाएँ।

करुणा—हाँ, घंटे-डेढ़ घंटे चीखने-चिल्लाने के बाद, मृतक के कुछ गुण वर्णन करने चाहिए। इससे शोक-संवेदना में चार चाँद लग जाते हैं।

कोमल—और गले और फेफड़े को आराम भी मिल जाता है।

करुणा—[साभिनय] हाय, क्या लच्छेदार बाल थे, भौरों-से लहराते, रेशम से चमकते। हाय, बेचारे ने कभी···

रानी—बहनजी, वह गंजा हो तब?

माया—तब, हाय क्या चिकनी-चिकनी चमचमाती खोपड़ी थी! अभी तक क्या चाँदी-सी चमक रही है। सूनों के मन्दा-सी झिलमिलाती। मैंगनीज की चमकती।

करुणा—ठीक पगली! गंजा नहीं, चाहे अंधा हो, काना हो, ऐंचा-

ताना हो, पर कहना यही, कमलनैन कटार-सी आँखें और नरगिस की आँखें। गुण-गान ही किया जाता है, इससे शोक में सघनता आ जाती है। मरने वाले का मूल्य भी बढ़ जाता है।

राधा—और क्या, मरने वाले के अवगुण कौन देखता है।

कोमल—शोक स्थायी भाव, मरने वाला आलम्बन विभाव, गुण-वर्णन उद्दीपन, ऊँ···ऊँ···ऊँ··· आँसू-सिसकियाँ, संचारी भाव। सभी मिलकर करुण रस की सिद्धि। आचार्य मम्मट साफ कह मरे। उद्दीपन नहीं, तो रसाभास। इसलिए, मरने वाले के सदा गुण ही गुण देखने चाहिए। [टेलीफोन की घंटी] ओह, एक मिनट···[प्रस्थान]।

करुणा—हाँ, समझी तुम लोग कुछ?—खैर, बहुत-से ऐसे गुण याद कर लेने चाहिए, जो किसी पर भी चिपकाये जा सकें।

कातिकी—जी, बहनजी।

धारा—इतने पर भी रोना न आए, हिचकियाँ न बँधें तो···?

राधा—याद भी रहता है, अभी तो बताया। समझ लो, तुम्हारे आदरणीय पिताजी बिस्तर गोल कर गये—सामने लाश पड़ी छटपटा रही है। घर में हाहाकार मचा है।

रानी—तब भी आँखें सूखी-सूखी रहें, तब?

माला—तब भी आँखें सूखी रहें, तो चली काहे को ट्रेनिंग लेने! जब संवेदना का पावन व्रत लिया, तो इतनी भी अनुभूति न जगायी, तो क्या किया? अपनी बुद्धि से भी तो कुछ करो या सब पुस्तकों में ही···!

कातिकी—पूछना कोई अपराध तो नहीं। लगी बड़ा रोब डाटने!

करुणा—शान्तम्! शान्तम्···! आपस में क्यों उलझने लगीं? हाँ, वैसे एक संवेदन-कलाकार के लिए कुछ भी कठिन नहीं। अभिनय-विशारद एक पल में आँसुओं की झड़ी लगा दे। फिर भी कभी-कभी अनुभूति धोखा दे जाती है। ऐसे आड़े समय आँखों में, जरा सरसों का तेल या पेनबाम लगा लो—बस आँखों के आकाश से रिमझिम-रिमझिम और फिर मूसलाधार।

सब—[तालियाँ] खूब! खूब! वाह, बहनजी, वाह!

[करतल-ध्वनि और हँसी]

करुणा—शान्तम् ! शान्तम् ! हाँ, तो अब तुम लोग एक छोट
रिहर्सल कर लो। धारा, रागी, माला, कातिकी, राधा—सब [गो
बनाती हैं] अब मातम के लिए तैयार। एक···दो···तीन···[को
आता है]।

कोमल—प्रारम्भ कर दिया ?

कातिकी—कर रही हैं।

करुणा—हाँ, शुरू करो। [तालियाँ बजाकर] एक···दो···तीन·

धारा—[साभिनय] हाये, सेठानीजी, तुम क्यों मर गयी जी। उ
चालीस साल, लम्बे-लम्बे बाल, गोरी-गोरी, मोटी···

करुणा—क्या बकने लगी ? सारा पढ़ा-पढ़ाया मिट्टी कर दिया
गला भी बन्द हो गया क्या ?

कोमल—घबराओ मत। तुम्हें तो बड़ों-बड़ों के लिए रोने जाना है
खैर, देखो, ध्यान से सुनो। हाँ, माला, तुम ?

माला—हाय, कहाँ गयी ? [गाते हुए] हम सबको बिलखता छो
चली। अपने सेठ से नाता तोड़ चली···ओ···छोटी सेठानीजी···

कोमल—स्वर में जरा लोच आना चाहिए। सुनने वाला तड़प उठे।

कातिकी—स्वर क्या रसीला निकाला। लगता है जैसे भैं
रम्भाती है।

माला—तू तो है बड़ी शोक-कला-विशारद ! रोती है, जैसे घोड़ी
हिनहिना रही हो।

करुणा—[संकेत से] रिप् !

[लड़कियों का हँसना]

कोमल—रसाभास ! रसाभास ! शोकस्थल में हास। भाव, अनुभाव,
उद्दीपन, संचारी···आचार्य मम्मट माथा पकड़ मरे हैं।

[सब लड़कियों की बड़ी हँसी]

करुणा—शान्तम् ! शान्तम् ! खामोश ! मातमपुर्सी करने जाओगी,
तो क्या इसी प्रकार बड़ी···ही···

कोमल—तुम शुरू करो, नानी।

करुणा—[तालियों सहित] बस, एक···दो···तीन !

राधा—[घबराहट से] अहूँ···अहूँ, सेठानीजी। मोटी-मोटी···ऊँह-ऊँह—सेठानीजी!

करुणा—अरे, तुम्हें हो क्या गया? यह तो क्लास है। अच्छा, तनिक जी ठिकाने लाओ। तब तक तुम, राधा।

राधा—हाय, छोटी सेठानीजी···मोटी-मोटी सेठानीजी, तेरी तीन गज की पतली कमरिया हो···तेरी रेशम की झिलमिल चदरिया हो। [गद्यात्मक] सोने की थलिया में सखानों की खीर भर-भर कौन खायेगा? आह, क्या विशाल हृदय पाया था। दर्जनों दशहरी आम बात-की-बात में पचा जाती। खोमचे वाले पर इतना तरस आता कि दो-दो रुपये की चाट बात-की-बात में चाट जाती। जब वह यह अशुभ समाचार सुनेगा, तो गली में पछाड़ खा-खाकर गिरेगा। हाय, अब उससे कौन सेरों मिठाई लेकर···

[प्रो० प्राण, मिसेज प्राण और सुकुमारी का प्रवेश]

कोमल—शाबाश! शाबाश! हाइट पर जा रही है चीज! यस-यस—गो ऑन—आये···ओह आप! आइए, आइए। अच्छा, तुम···

[कोमल संकेत करता है। सबका प्रस्थान]

प्राण—डाक्टर गंजू ने बताया। आपकी बड़ी प्रशंसा की। लेकिन चल रहा था क्या? क्षमा करें।

कोमल—आजकल काम बहुत ज्यादा—नयी टीम तैयार की जा रही है। हाँ, आप मिस करुणा, वाइस प्रिंसिपल, और आप मि० प्राण, भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक।

प्राण—आप मिसेज प्राण और यह मेरी बहन मिस सुकुमारी। आप मि० कोमल, प्रिंसिपल संवेदना-सदन।

['हें हें हें···नमस्ते-नमस्ते' के स्वर]

प्राण—आप ही प्रबन्ध करेंगे हमारे यहाँ मालूम था। आपके बड़े-बड़े शानदार स्यापे रहे। शोक-संवेदना के संसार में आपने नया आदर्श उपस्थित कर दिया।

करुणा—हम मानव भोले से जितनी सेवा हो जाए कम। बैठिये न।

सुकुमारी—नो-नो, वैटूस ऑल राइट।

[सब कुर्सियों पर बैठते हैं।]

प्राण—सचमुच, इन दिनों रोदन-दलों की सबसे बड़ी आव
है—ग्रेटेस्ट सर्विस टू दि नेशन।

कोमल—आपकी गुण-ग्राहकता के लिए धन्यवाद।

प्राण—हाँ, मैं इसलिए आया···मेरे पूज्य पिता···

करुणा—स्वर्ग सिधार गये!

कोमल—सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई!

प्राण—नहीं-नहीं, अभी तो नहीं, पर शीघ्र आशा है।

मिसेज प्राण—कृपा कर उनके लिए बढ़िया-सी टीम···

करुणा—किस दिन चाहिए?

प्राण—अभी तक तो पिताजी ने कोई तारीख नहीं बतायी।

सुकुमारी—और बेसुधी में कोई दिन तय भी कर दें, तो कि
क्या।

कोमल—डाक्टर गंजू क्या कहते हैं?

प्राण—कहते हैं, जो बच जाएँ, तो इलाज करना छोड़ दूँ।

करुणा—सचमुच उनकी दवा में ऐसा ही जादू है।

कोमल—मेरा मतलब, कोई खास तारीख निश्चित नहीं की?

मिसेज प्राण—यही तो सबसे बड़ी परेशानी। मौके पर मातम-मण्ड
न मिली तो हम कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं। परमात्मा ने
दिया, मान दिया, हमें क्या कुछ नहीं बनाया। पिताजी के लिए समय
एक शानदार शोक-समाज भी न जोड़ सके···आह···

सुकुमारी—कुल की शान मिट्टी में मिल जाएगी।

कोमल—पर जिस दिन मरने की आशा रखते हों, उस दिन के लि
एक टीम बुक करा लें।

प्राण—यदि उस दिन भी दुर्भाग्य से उनकी मौत न हुई?

करुणा—शत्रु से भी परमात्मा इतना नाराज न हो।

मिसेज प्राण—सोचना तो पड़ता है।

कोमल—जिस पिता ने आपके लिए इतना सब-कुछ किया, इत
धन छोड़ा, समाज-सेवा कर संसार में नाम कमाया, जन-जन के मन

प्रो० प्राण ! पर ऐसे पिता कहाँ मिलते हैं ? पिता बार-बार तो जन्म लेता नहीं । क्या पूज्य पिताजी के लिए इतना भी रिस्क नहीं ले सकते ?

सुकुमारी—बुक करा लेना है तो सेफ, मि० प्राण । सचमुच ऐसे महान पिताजी कहाँ मिलेंगे ? [करुण अभिनय] दिल में हूक-सी उठती है । कलेजा मुँह को आता है···आह, पिताजी !

करुणा—दिल भारी न करो ।

मिसेज प्राण—क्यों, क्या सोचा ?

प्राण—हाँ, अच्छा··· हूँ हूँ हूँ···क्षमा करें । वैसे, कितने···कुल चार्जेज होंगे ?

करुणा—इसकी चिन्ता न करें । क्वालिटी देखनी चाहिए । और पैसा तो है हाथ का मैल । यह माया आनी-जानी है ।

सुकुमारी—ऑफ कोर्स ।

मिसेज प्राण—फिर भी ।

कोमल—'ए' क्लास टीम में दस कलाकार । प्रति कलाकार सौ रुपये । पाँच घंटे की संवेदना ड्यूटी । लाश उठाने से दो घंटे पहले रोदन, चीत्कार-हाहाकार, फुलहाइट पर । इसके बाद आधा घण्टे तक सिसक-सिसक, सुबकियाँ ले-लेकर मृतक की कथा-वार्ता-स्मरण । पश्चात् बीस मिनट का अवकाश । चाय-पानी । प्रबन्ध ग्राहक की ओर से । इसके बाद, दस मिनट फिर स्मरण-कथा-वार्ता । फिर एक घंटे तक वही पूर्व कार्यक्रम । लाश उठाने के बाद एक घंटे तक···फास्ट टेम्पो । हाय-हाय चीत्कार ।

सुकुमारी—पाँच घंटे से अधिक समय लगे तब ?

करुणा—तब ओवर टाइम देना होगा । तीस रुपये प्रति आर्टिस्ट, प्रति घण्टा ।

मिसेज प्राण—चार्जेज बहुत अधिक हैं ।

सुकुमारी—टू मच्च ।

कोमल—अधिक ? आपके इतने बड़े मुँह से इतनी छोटी बात ! प्रेम, सहानुभूति और संवेदना का भी क्या कोई मोल आँक सकेगा ? सब-कुछ मिल जाता है, मिसेज प्राण, पर सच्ची संवेदना-सहानुभूति नहीं ! यही हम दे रहे हैं ।

प्राण—सचमुच, इन दिनों रोदन-दलों की सबसे बड़ी आवश्यकता है—ग्रेटेस्ट सर्विस टू दि नेशन।

कोमल—आपकी गुण-ग्राहकता के लिए धन्यवाद।

प्राण—हाँ, मैं इसलिए आया···मेरे पूज्य पिता···

करुणा—स्वर्ग सिधार गये!

कोमल—सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई!

प्राण—नहीं-नहीं, अभी तो नहीं, पर शीघ्र आशा है।

मिसेज प्राण—कृपा कर उनके लिए बढ़िया-सी टीम···

करुणा—किस दिन चाहिए?

प्राण—अभी तक तो पिताजी ने कोई तारीख नहीं बतायी।

सुकुमारी—और बेसुधी में कोई दिन तय भी कर दें, तो विश्वास क्या।

कोमल—डाक्टर गंजू क्या कहते हैं?

प्राण—कहते हैं, जो बच जाएँ, तो इलाज करना छोड़ दूँ।

करुणा—सचमुच उनकी दवा में ऐसा ही जादू है।

कोमल—मेरा मतलब, कोई खास तारीख निश्चित नहीं की?

मिसेज प्राण—यही तो सबसे बड़ी परेशानी। मौके पर मातम-मण्डली न मिली तो हम कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं। परमात्मा ने धन दिया, मान दिया, हमें क्या कुछ नहीं बनाया। पिताजी के लिए समय पर एक शानदार शोक-समाज भी न जोड़ सके···आह···

सुकुमारी—कुल की शान मिट्टी में मिल जाएगी।

कोमल—पर जिस दिन मरने की आशा रखते हों, उस दिन के लिए एक टीम बुक करा लें।

प्राण—यदि उस दिन भी दुर्भाग्य से उनकी मौत न हुई?

करुणा—शत्रु से भी परमात्मा इतना नाराज न हो।

मिसेज प्राण—सोचना तो पड़ता है।

कोमल—जिस पिता ने आपके लिए इतना सब-कुछ किया, इतना धन छोड़ा, समाज-सेवा कर संसार में नाम कमाया, जन-जन के मन में जिसका इतना मान—इस प्रकार संसार में सब-कुछ मिल जाता है,

प्रो० प्राण ! पर ऐसे पिता कहाँ मिलते हैं ? पिता बार-बार तो जन्म लेता नहीं । क्या पूज्य पिताजी के लिए इतना भी रिस्क नहीं ले सकते ?

सुकुमारी—बुक करा लेना है तो सेफ, मि० प्राण । सचमुच ऐसे महान पिताजी कहाँ मिलेंगे ? [करुण अभिनय] दिल में हूक-सी उठती है । कलेजा मुँह को आता है···आह, पिताजी !

करुणा—दिल भारी न करो ।

मिसेज प्राण—क्यों, क्या सोचा ?

प्राण—हाँ, अच्छा···हें हें हें···क्षमा करें । वैसे, कितने···कुल चार्जेज होंगे ?

करुणा—इसकी चिन्ता न करें । क्वालिटी देखनी चाहिए । और पैसा तो है हाथ का मैल । यह माया आनी-जानी है ।

सुकुमारी—ऑफ कोर्स ।

मिसेज प्राण—फिर भी ।

कोमल—'ए' क्लास टीम में दस कलाकार । प्रति कलाकार सौ रुपये । पाँच घंटे की संवेदना ड्यूटी । लाश उठाने से दो घंटे पहले रोदन, चीत्कार-हाहाकार, फुलह्वाइट पर । इसके बाद आधा घण्टे तक सिसक-सिसक, सुबकियाँ ले-लेकर मृतक की कथा-वार्ता-स्मरण । पश्चात् बीस मिनट का अवकाश । चाय-पानी । प्रबन्ध ग्राहक की ओर से । इसके बाद, दस मिनट फिर स्मरण-कथा-वार्ता । फिर एक घंटे तक वही पूर्व कार्यक्रम । लाश उठाने के बाद एक घंटे तक ''फास्ट टेम्पो । हाय-हाय चीत्कार ।

सुकुमारी—पाँच घंटे से अधिक समय लगे तब ?

करुणा—तब ओवर टाइम देना होगा । तीस रुपये प्रति आर्टिस्ट, प्रति घण्टा ।

मिसेज प्राण—चार्जेज बहुत अधिक हैं ।

सुकुमारी—टू मच ।

कोमल—अधिक ? आपके इतने बड़े मुँह से इतनी छोटी बात ! प्रेम, सहानुभूति और संवेदना का भी क्या कोई मोल आँक सकेगा ? सब-कुछ मिल जाता है, मिसेज प्राण, पर सच्ची संवेदना-सहानुभूति कहाँ ! यही हम दे रहे हैं ।

रानी—जी बहनजी, पर

कोमल—हाँ-हाँ, पूछ लो न—लजाना क्या ?

माला—उनकी व्यापारिक बुद्धि के बारे में···

पुरुष—अक्ल के वह सौदागर, बुद्धि के भण्डार, लाखों का ब्लैक मार्केट किया, हजारों का हिसाब-किताब इधर से उधर। टैक्स बचाने मे एक नम्बर उस्ताद ! मजाल है, कोई फँसा दे। सब कुछ किया। किस शान से, किस गौरव से दिवाला तक निकाला, पर आबरू मे बट्टा न लगने दिया।

कोमल—महापुरुषों के यही लक्षण।

करुणा—और तो कोई बात नहीं ? [सब गर्दन हिलाती हैं] तब शुरू करो, वन-टू-थ्री। कहाँ चला गया, ओ ! कहाँ चला गया, चाचा मेरे !

सब—[गाते हुए] तुम सबको बिलखता छोड़ चले··· तुम सबको तड़पता छोड़ चले···तुम सबको तड़पता छोड़ चले ···तुम सबको बिलखता छोड़ चले···तेरी सोने की सूनी अटरिया हो ···हो रे···

कोमल—शाबाश ! शाबाश !

पुरुष—काम तो अच्छा कर जाएँगी।

स्त्री—अहा, क्या सुरीला गला है, पर···

करुणा—पर क्या ?

स्त्री—आँखों में आँसुओं का पता नहीं।

पुरुष—हें-हें-हें-हें, क्षमा करें। एकान्त मे भी तनिक कमी-सी लगती है।

कोमल—आपके सामने सकोच है। जब माता सामने होगी तो वह सिसक-सिसककर रोएँगी कि आप सारा शोक भूल इनका तमाशा देखने रह जाएँगे। लोग मोहित न हो जाएँ तो कहना !

करुणा—तनिक रिहर्सल तो पूरा हो जा

बजाकर] एक-दो-तीन।

माला—हाय सेठ ! हाय सेठ !

सब—हाय सेठ ! हाय सेठ !

माला—दान-धरम करवैया सेठ !

सब—दान-धरम करवैया सेठ !

माला—सूम शिरोमणि मोटा सेठ !

सब—सूम शिरोमणि मोटा सेठ !

माला—हाय अक्ल का मोटा सेठ !

सब—हाय अकल का मोटा सेठ !

माला—[सस्वर] हाय सेठ, तू कहाँ गया, इतना तो बता के जा ! इतना तो बता जा…जरा, धीरज बँधा के जा ।

[सब उसी स्वर में दोहराती हैं]

कोमल—शाबाश! शाबाश! आंसू-आंसू ! हाइट पर जा रहा है रोदन! आंसू-आंसू !

धारा—क्यों आंसू हाय आते ही नहीं, इतना तो बता के जा ! हाय, धीरज बँधा के जा !

कोमल—शाबाश ! शाबाश ! यानी वेदना की हद ! आंसू कहाँ से आयें । आंसू न आये तो वालाओं की जान का खतरा । करुणाजी, आंसू शीघ्र ! जान का खतरा !

करुणा—[सस्वर] तू हमें छोड़ के कहाँ चला, इतना तो बता के जा ! क्यों लाखों का कर्जा छोड़ मरा, इतना तो बता के जा !

पुरुष—नहीं-नहीं चाचाजी ने तनिक भी कर्जा नहीं छोड़ा।

कोमल—ना-ना, इससे आपका मान बढ़ेगा । कितना सपूत भतीजा, चाचा का लाखों का कर्जा चुकाया । कुल की मर्यादा पर आँच न आने दी और कितनी पतिव्रता भतीज-बहू कि उफ तक नहीं की !

स्त्री—इन्हें कहने भी दो । ठीक है । हजारों रुपया बर्बाद किया चाचाजी के लिए, पर मैंने जो कभी हाथ पकड़ा हो इनका ।

पुरुष—वैसे और सब बातें ठीक, आशातीत । छटपटाती वाणी, तड़पता स्वर, कोयल की कूक-सी, पपीहा की हूक-सी, लेकिन आंसू न आए, तो सारा मजा मिट्टी हो जाएगा ।

करुणा—आंसू तो ऐसे आएँगे कि रोके न रुकें ।

माला—बहनजी, किसी को सामने लिटा दीजिए । बैठकर अभ्यास हो जाए ।…अनुभूति तभी जागेगी, जब कोई सामने लाश के समान…

कोमल—दो मिन के लिए आप ही कष्ट करें।

पुरुष—क्या मैं ही तनिक देर के लिए'''काम शीघ्र निबट जाएगा?

स्त्री—वाह, मैं तो कभी ना लेटने दूंगी। कम कुछ हो गया तो तुम तो आराम से चल बसोगे, मुसीबत तो मेरी आएगी।

राधा—चातिकी को लिटा दें, बहनजी, इसका गला भी ठीक ।

चातकी—वाह, तू क्यों नहीं लेट जाती? मैं नहीं, बहनजी।

कोमल—चलो, चलो जल्दी, देर होती है।

चातिकी—हम तो ना, हमे तो शरम लगे है।

करुणा—पगली, शर्म काहे की? जन-सेवा मे शर्म! चल, ऐं शाबाश! [चातिकी मुर्दे की तरह लेटती है।]

रागी—हाय, बेचारी चल बसी'''दो दिन भी बीमार न रही—हाय चातिकी!

चातिकी—[उठने का प्रयत्न] मरे तू कम्बख्त! बहनजी, मैं नहीं'''

करुणा—शान्तम्, शान्तम्! इस बार आँसुओं की मूसलाधार वर्षा होने लगे।

सब—हाय, चाचा! हाय, चाचा! हाय, चाचा! हाय, चाचा! हाय, अचानक मर गया चाचा—बिस्तर गोल कर गया चाचा। ऊँ-ऊँ ऊँ'''हाय चाचा, हाय चाचा! [सस्वर] तू लाखों का कर्जा छोड़ चला। ओ इतना तो बता के जा। हाय, हमें धीरज बँधा के जा।

कोमल—आँसू! आँसू! [रागी और धारा के पास आकर उनकी कमर में नोचता है] शाबाश! आँसू!

माला—आय-आय-हाँ। [रोते हुए] हाय, तू हमको तड़पता छोड़ चला। ऊँ-ऊँ-ऊँ'''इस दुनिया से क्यों मुँह मोड़ चला। हाँ-हाँ, इतना तो'''

माला—हाय चाचा! चाच मर गया! चाचा मर गया!

[चातिकी 'आय-आय' करती है। सब रोते हुए 'हाय चाचा! हाय चाचा' कह उसे पीटने लगते हैं। चातिकी खड़ी हो जाती है। सबमें कोलाहल और हापाधापी]

कोमल—शाबाश! शाबाश!
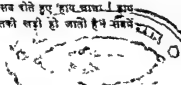
करुणा—चलो-चलो क्लास में। [कोलाहल के साथ प्रस्थान] अभिनय शानदार।

स्त्री—बढ़िया काम कर जाएँगी। हम सन्तुष्ट हैं, शीघ्र तैयार कर दें।

पुरुष—अभी घर से रुपया भेजता हूँ। टीम तैयार रहे।

['नमस्ते-नमस्ते' कहकर दोनों का प्रस्थान]

करुणा—माला ने तो काम ही बिगाड़ा होता।

कोमल—ग्राहक फँस गया।

[कोलाहल के साथ सभी लड़कियों का प्रवेश]

चातिकी—मुझे क्या इसलिए लिटाया था? अभी तक छाती में पीड़ा—ऊँ-ऊँ-ऊँ! माला ने जान-बूझकर···

करुणा—अभिनय का यह अर्थ तो नहीं, बेचारी को धुन डाला।

माला—शोक के कारण यह ध्यान ही न रहा कि यह चातिकी है।

रागी—ऐसी हालत में ध्यान रहता है क्या? विशेषकर, जब चातिकी मर···

चातिकी—मरे तू कम्बख्त! [सबका हँसना।]

करुणा—शान्तम्! शान्तम्! पर माला की आँखों से आँसू की झड़ी लग गयी। कला का अर्थ तो यही है।

रागी—रोना आ कैसे गया? मुझे तो कोशिश करने पर भी···

माला—देर तक प्रयत्न किया, आँसुओं का मीलों तक पता नहीं। देवी मैया की मानता मानी, तब भी आँखें सूखी-सूखी। फिर ध्यान आया, सोचा प्रिंसिपल ने आत्महत्या कर ली है। बिस्तर पर पड़े, घायल पंछी की तरह छटपटा रहे हैं···गिड़गिड़ा रहे हैं—बचाओ-बचाओ!···डाक्टर ···डाक्टर! करुणाजी! करुणाजी! बचाओ! आह, अन्त में तड़प-तड़प कर दम तोड़ दिया।

चातिकी—सच?

माला—फिर सोचने लगी—हाय! अब हमें कौन पढ़ाएगा? हाय, भरी जवानी में यह वज्रपात! सोचते ही आँखें छलक उठीं। हाय, आज इनके लिए रोने वाला भी कोई नहीं। जो सबके लिए रोदन दल भेजे, आह! आज उसके लिए···

कोमल—शाबाश ! माला ने रोदन कला मे...[थपथपाता है] कमाल पा लिया। ऐसी कलाकारों से ही सदन की शान है।

राधा—और ये धारा और रागी भी तो रो रही थी।

रागी—अचानक कमर मे जैसे बिच्छू ने डंक मारा—तड़प उठी। अभी तक आग-सी लग रही है।

धारा—यही मेरा हाल—कमर की खाल उखाड़ ली किसी ने। छटपटाकर देखा, तो प्रिंसिपल सा'ब नोच रहे हैं। बड़े बुरे हैं प्रिंसिपल सा'ब।

[सबका हँसना]

करुणा—उनके सामने अपमान कराना था क्या ?

सातिकी—अच्छा हुआ...तुम्हें भी तो पता चला। अहा जी... [तालियाँ बजाती हैं। सबका हँसना। पुरुष-स्त्री का पुनः प्रवेश।]

पुरुष—घर भी न पहुँच पाये। रास्ते मे ही पता चल गया। चाचा जी चल बसे। [नोट देता है]।

कोमल—[गिनते हुए] गुड, लकी, वैरी लकी ! [नमस्ते कहकर दोनों का प्रस्थान।]

करुणा—शीघ्र तैयार हो लो। और वह बढ़िया काम करना... कि हमेशा तुम्हारी ही टीम वहाँ...

कोमल—थोड़ा-सा पेनबाम अवश्य साथ रखना, कहीं वहाँ आँसू ही न आएँ।

माला—और क्या, वहाँ प्रिंसिपल सा'ब नोचने नही जाएँगे।

[सबका हँसना]

कोमल—ड्रेस इत्यादि पहन लो तब तक।

[भोलू का प्रवेश। तार का लिफाफा देता है। करुणा खोलकर पढ़ती है]

कोमल—क्या है ?

करुणा—[लिफाफा देते हुए] पिताजी का स्वर्गवास...

कोमल—[पढ़ते हुए] ओह ! यह वज्रपात ! मैं आपके दुःख मे समान दुःखी हूँ, मिस करुणा !
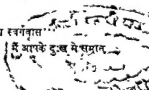
करुणा—भगवान् की इच्छा। मौत का कोई इलाज नहीं। अरे, तुम तैयार हो लो न।

माला—आपके पिताजी की···

करुणा—हां, बीमार भी नहीं थे कुछ।

रागी—[ताली बजाकर] अहा जी···तब तो हम वहीं जाएँगे।

चातिकी—हम भी सब पिताजी के लिए शोक-संवेदना···वहीं दिखाऊँगी अपना आर्ट।

करुणा—क्या बकती है! चलो, तैयार हो लो। वहां पहुँचना है शीघ्र। वह एडवांस दे गया है।

सब—हम तो पिताजी की मातमपुरसी करने जाएँगी।

कोमल—अरे भई, कहना माना करो। उससे एडवांस आ चुका है, वह क्या कहेगा। और वहां तो रोने वाले बहुत हैं।

माला—नहीं, हम तो नहीं। वाह, घर में मौत हो, हम दूसरों के यहां। हम नहीं···हमें तो पिताजी के लिए···

करुणा—पगली कहीं की!

सब—नहीं-नहीं, चलो-चलो, शीघ्र तैयारी करें। [सबका प्रस्थान]

कोमल—अरे···अरे···अजीब हठीली लड़कियां···

करुणा—सुनो, सुनो तो···

[दोनों का प्रस्थान]